UNIVERSAL LIBRARY
OU_180929
UNIVERSAL LIBRARY

H 81.6 | R14P; G.H.1710
रांगेय राघव |
पिघलते पत्थर | 1946

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 81.6 / R14P. Accession No. G.H. 1710
Author रांगेय राघव ।
Title पिघलते पत्थर । 1946
This book should be returned on or before the date last marked below.

पिघलते पत्थर

रांगेय राघव

भारती भवन
आगरा।

कॉपी राइट १९४६
रांगेय राघव
१९४६

मुद्रक,
श्यामसुन्दर शर्मा
शांति प्रेस
आगरा

मूल्यांकन

अपमानों की है भस्म शेष
मन करता है व्याकुल पुकार

अंतस् की घुटती अभिलाषा
में आया है फिर एक ज्वार

लहरों की टंकारों में है
कितना अथाह उन्माद घोर

अरमानों की यह विकल भीर
भरती आशा नभ में मरोर

बोलो रे युग-युग के शाश्वत
ओ दीपस्तंभ फिर उठो बोल

है कहां गीत जो लहरों पर
सुन, मांझी दे फिर पाल खोल ?

है भटक रहा यह कौन आज ?
सम्राटों का गजराज भीम
क्यों धूलि पटकता है सिर पर
अपने ही, खो कर आज लाज ?
इसको रे दुख कैसा असीम ?

मैं संस्कृति का कटु विकृत अंध
यह लुब्ध रूप अवलोक आज--
कहता ज्यों--नभ से गिरी गाज--

वह सड़ा गला निर्बल समाज
कहता यदि हम करते प्रचार
तो यह प्रचार ही सही सतत
यदि इसमें जीवन की पुकार
मुखरित होती है बार-बार,

यदि अंधकार पर नखत बने
जड़ते हैं हम निज शब्द दीप्त,
यदि रनिवासों के दीप नहीं
सह सकते यह तूफान घोर,
तो कहो कि प्रहरी का स्वर सुन
कब ठहर सके हैं क्लीव चोर ?

हम नहीं प्रशंसा के भिक्षुक

हम नहीं किसी के दीन दास
सामंतवाद को ठोकर दे
निर्बन्ध गरजते, मुक्त हास,
हम रक्त-शोषकों को अपनी
करते न समर्पित कला-ज्योति

हम नहीं कृपा के लालायित
जो ढकें पाप की घृणित लाज
हम दीप-ज्योति, आंसू, आत्मा
के छल में हो न सकें कुंठित,
जब तक दीपक-तल अंधियारा
होता है रह-रह कर लुंठित।

यदि नहीं कर सके सृजन कि युग-युग
ज्योतिर्पिंड जले प्रदीप्त
तो विन्दु-विन्दु आलोक भले
पथ तो हो जायेगा प्रशुभ्र

हम उस महानता से सुदूर
जिसमें छल भी आधार एक;

रस्सी से पनघट कटता है
यह है श्रम, साधन का विवेक

यदि छंदों का आवरण रूप
भी भावों का बन्धन होगा

तो युग-युग का लेकर सँगीत
बदलेंगे विनिमय का माध्यम,
हम हैं नवयुग के अग्र-दूत
शोषक का करते दर्प चूर,

युग-युग के अंधतिमिर को यदि
तुम कहते हो गौरव अतीत
तो हम न कभी सह पायेंगे
सत्यों पर यह भीषण प्रहार !

हम चाँद न देखेंगे जब तक
मानव शिशु मरता है निरन्न,
कोरा बन्धुत्व नहीं होगा
जब तक कि क्रिया औ' कर्म भिन्न,

हम सामंजस्यों में तेरी
सत्ता का देंगे नहीं न्याय,
ओ क्षुद्र ! देख हम महाकाय !

हम कभी नहीं धोखा दे कर
टुकड़ों पर पलता यश लेंगे
तेरे स्वार्थों की सिद्धि हेतु
गायेंगे और न चुप होंगे
अनजान, अकथ, निर्वीर्य्य बद्ध,
कह कह उगलो अपने विकार
पर हम ध्रुव सा विश्वास लिये
सागर लहरों को रहे फाड़

हम हैं धरती के पुत्र ! स्वर्ग के
उत्तराधिकारी प्रवीर,
धरती को स्वर्ग बनायेंगे
मरु मिटा, महागिरि-वक्ष चीर

हम संघ शक्ति वरदानों की हैं
विजय-ध्वजा फर-फर विमुक्त,
हम मानवता की विजय महागति
की पग-ध्वनि की अमिट गूंज

वेदना आज है खड़ी द्वार
जग भर का लेकर शाप, भार
मैं क्यों न हाथ दूं यह पसार,
जिनमें युग पीड़ित चिर जीवन
आकर पाये शाश्वत दुलार ?

कोई न ले सका यह विषाद,
अंतर्बाहर का जड़ विराग
लौटादो मुझको हाय आज
हा हा खाता व्यक्तित्व भाग
लय करदूं मैं भी अल्पमात्र,

इस एक बूंद की काया पर
सागर का गरजे महा रोष,
यह घृणा स्नेह का प्रतीकात्म
यह महारुद्र है आशुतोष

सुन्दरता से मन सिक्त मुग्ध
आलोकित ज्योत्स्नास्नात बुद्ध--
मेरा स्वर अत्याचारी के
उठता है भीषण घोर क्रुद्ध

निर्मम विरुद्ध:
बोलो कवि !
मेरे ज्योतित रवि !
तुम अंधकार के पाशों के
सम्मुख दोगे क्या झुका शीश ?
संहार-शक्ति क्या वही श्रेय
जिसमें बर्बरता मुक्त स्फीत ?

भस्मों की चिनगारी लोगे या
हरियाली का मृदुल गीत ?
दुख का आवाहन दोगे या
आनन्द स्फूर्ति का स्वर अभीत ?

बोलो कवि झुकती है संध्या
छानेवाला है अंधकार
भूखे नृशंस पशु-सा गरजा
जलती आंखों का अहंकार

बोलो कवि माता की ममता
या कामुकता का यौन-गीत,
आलोक भविष्यत् का मुखरित
या धूमिल-धूमिल सा अतीत,

निर्माण या कि फिर अगतसार
पथ है कितना विस्तृत अपार
किस ओर, दिशा है कौन आज ?
गति निश्चय, पथ को नहीं लाज।
मैं तो कहता हूं एक बात
जो है प्रसन्न जीवन विकास—

हम स्वप्नों की आलोक किरन
पथ पर करते हैं मृदु पगध्वनि
हम विश्व-वेदना से व्याकुल
करते हैं प्यार करुणचेतन,
हम पथ को स्वर्णिम कर देंगे
जिस पर खेतों, घर ग्रामों से
मिल, फैक्ट्री, औ' मैदानों से
हिन्दू, मुस्लिम, मदरास, बंग
उत्कल, गुजरात, कलिंग अङ्ग
रूसी, जर्मन औ' जापानी
दुनिया भरकी जनता सारी
गाती उमड़ेगी निकल-निकल
गूंजेगा सारा नभ चञ्चल.....
रोकेगा जो पथ-कंटक बन
कुचलेंगे उसको निर्दय बन

अत्याचारी को क्षमा न कर
(वह है पापों की भित्ति अमर)
हम सदियों के सांस्कृतिक कोष
आलोकित करते पथ सत्वर.....

हलाहल

बहुत दूर—

साम्राज्यवाद के प्रति—

ओ वृद्ध मधुर जीवन विसार
अंतिम घड़ियों में दुखित मूक
क्या टुकर टुकर कर देख रहा
मानव मन से अति दूर दूर

तेरी आँखों के नीलम में
युग युग का रुद्ध गगन व्यापा
जनता के दुख अंधियारे में
तेरा विलास वैभव छाया

उस दिन पृथवी पर रक्त बहा
भेदों की निर्मित कर कारा
तू खड़ा हो गया था निर्मम
बन स्वेद बही दुख की धारा

तेरे यौवन की तृष्णा में
बह गये अनेकों आ आ कर
तेरी लिप्सा अरमानो में
जल गये अनेकों हा हा कर

थी विजय लालसा क्रीड़ा ही
जल गये राष्ट्र बन कर पतंग
तेरी मदिरा से रंगते थे
वैकुण्ठ स्वर्ग के गेय रंग

तू सोया था तारिल सा नभ
तुझ पर छाया करता रहता
विदलित नारी का क्रीत रूप
तेरे पग था दाबा करता

तेरे कठोर प्रस्तर उर पर
सोना चाँदी थे खेल रहे
उस ओर विकल अगनित मानव
जीवन का बोझा ठेल रहे

तू था यौवन का सौदागर
तू कला प्रेम का व्यापारी
झूठी मर्यादा के बन्धन
तुझको ही लगते थे भारी

इतना मदपान किया तूने
पच भी न सका जो खाया था
सोने की झिलमिल में भूला
तू गुण है अपनी काया का

तू रहा खेलता एक ओर
था समय सामने जा बैठा
मानव के प्यादे चले बहुत
था बीत गया युग भी, बैठा

ऊर्वशि की मधुरा पग ध्वनि में
रम्भा के सरस उरोजों में
तेरे नयनों का था विलास

मद की धारायें बहती थीं
उर पर मालाएं लड़ती थीं

वासना पिपासा बजती थीं
इतना खू मार फिर क्यों उदास

सोया मानव था नयन मूँद
तू अगन फूल था चुका सूँघ
काँटों को फिर क्यों रहा रूँद
भरने दे अपना अपना घट
तेरी विजय श्री का झंडा
मुर्दों से रक्तिम हाय रंगा
शस्त्र ध्वनि ही तेरा घंटा
तू चलता था कर महानाश
पृथ्वी कंपित होती क्षण क्षण
अंबर हिल कर करता गर्जन
सागर बन जाते थे ईमन
रक्तिम था तेरा अट्टहास
तेरी ज्वालायें उगल रहीं
मानवता पर प्रतिशोध क्रोध
जिनकी हड्डी—तक चूस हँसा
है फूट रहा वह प्रबल रोष

जल गया रोम धू धू भीषण
चीत्कारों से भर गये श्रवण
सभ्यों का वह जलता क्रन्दन
नीरो का उन्मद अट्टहास
मानव पशु का वह युद्ध मेल
बर्बरता का उन्माद खेल
तेरी कलुषित तृष्णाओं का
था रुधिर मृत्यु से हुआ मेल

आंखों में प्यासों की पुकार
जय और पराजय का विहार

ममता का वह कोमल दुलार
नर की आकांक्षा का कुठार;

इतना वैभव ज्यों घृणित व्यर्थ
कल के दिन जो इतना समर्थ
कर सका कि जो इतना अनर्थ
अब युग-युगांत के परिवर्तन
में देख रहा है खंडहर बन

जिन वैभव की दीवारों में
जिन सोने की मीनारों में
सुन्दरियां करतीं थी नर्तन
था नाज़ अधिक मानव से भी
वे आज कहीं सूने वन में
कंकालों सी करतीं मर्मर

कितनी आकांक्षायें ज्वलंत
कितने पतझर कितने वसंत
आये गुजरे बन आदि अन्त
अब बीत गई है वह बहार
प्रतिद्वन्द्व स्वयं भय बना आज
झूठा घमंड, यह रूढ़ि लाज
घुन बन कर खाते तुझे मुक्त
कल का मानव है स्वप्न आज
कल का वैभव है भग्न आज

वे महल आज सूने निर्जन
वे क़िले हुये हैं मौन विजन
सुन्दरी जहां पर हँसतीं थी
है वहाँ गीदड़ों का रोदन
सैनिक सोता था दर्प लिये
है वहां दूब उग रही विजन।

वे स्तंभ जो कि आधार बने
लड़खड़ा रहे हैं बार बार
सूनी पैशाचिक वायु आज
बह रही सांय कर हहाकार
वे स्वप्न और वे सत्य आज
सब मिटे, लुटे, उठ गये साज
बस अमर रह गया जन समाज
हट गई दुखद छाया धूमिल
सागर सा गर्जन करता है
विध्वस्त करेगा तेरा बल

आर्य्यों का भीषण रौद्रनाद
शक हूणों का वह सिंहनाद
यूनानी जीतों की पुकार
मुग़लों के मद का अहंकार
फिर अंत विदेशी गोरों का
धरना कलुषित साम्राज्यवाद
रुस्तम पृथ्वी दहलाता था
वह कर्ण फेंकता रथ महान
वह देख सिकन्दर के विरुद्ध
सेना करती है महामान
तैमूर और चंगेज़ सभी
हैं कहाँ आज ? हैं कहाँ आज ?

कल के नृप भिखमंगे व्याकुल
कल के रुस्तम लंगड़े निर्बल
उस काल गुफा में सब विलीन
मिट गया आज अभिभूत दीन
इस वैभव के दीपक के तल
रह जाता है रे अंधकार

उस अंधकार में छिप जाती
मानव की युग युग की पुकार
ये मानव के .खूनी वैभव
ये दुख के अन्तिम चरण चिन्ह
असमानरूप के महास्तंभ
मानवता के अपमान दंभ
मिट जायेंगे निर्बल विपन्न
हो जायेगा तम छिन्न भिन्न

वह कब्र एक उसके समीप
साम्राज्यावाद फटता लुटता
गत युग के वैभव की स्मृति कर
पल पल जर्जर होकर झुकता
अब भी है विष को उगल रहा
अन्धा अपने में भूल रहा
पर जनसमाज का महाखड्ग
उसके सिर पर है झूल रहा

भूतों का युग प्रेतों का युग
सब गये हुआ। मानव ज्योतित
यह साम्राज्यों का युग बीता
फैले जग में फिर शान्ति अमित

ले देख ध्वंस के द्वार गये
पंथी ! मिथ्या का सर्वनाश
शोषण दासत्व प्रलय से उठ
होता मानव का नव विकास

स्वस्तिवाचन

आओ जगाने सुप्त को
मुझ से हृदय के गीत लो
जो धर्म, धन औ' जाति के
लघु बन्धनों से पार हों
जिनमें युगों की रूढ़ियाँ
जल-जल पराजित क्षार हों
आओ.....

जो दुःख में हों सान्त्वना
जो शक्ति में हों कामना
जिनमें सुलगता प्यार हो
हुङ्कार हो, न कि याचना
आओ.....

जो दलित का विद्रोह हों
जो तिमिर में चिर ज्योति हों
जो प्रबल क्षण की स्फूर्ति में
चिर मुक्तियुग का बोध हों
आओ.....

जो साम्य के धन के लिए
मरु-से तड़पते प्राण हों
जो सत्य गरिमा के लिए
गिरि से उठे अभिमान हों
आओ.....

जो नोंक बन हल की सतत
चट्टान को भी फाड़ दें
जो दासता के शीश को
इतिहास में ही गाड़ दें
आओ.....

जो माधवी निशि में मलय
पर झूम लें परिमल भरे

जो कलरवों में चुम्बनों का
गूँज को मुखरित करें
आओ.....

आलोक जन-जन में जगे
चिर प्यार की यह चेतना
है बोलती जो आज मुझ में
तप्त जग की वेदना
आओ.....

अपमान जीवन का न हो
मधुज्ञान पँखुरी खोल दे
मानव यहाँ मानव बने
मधुराग सब में घोल दे
आओ.....

मैं स्वस्तिवाचन कर रहा
कल्याण सबको दे रहा
मङ्गल-विभा से स्नात उर की
मुक्ति क्षण-क्षण दे रहा
आओ.....

भिखारी

बोल मेरे प्राण—
क्यों उन्माद में अभिशाप
छाया डालता है बोल !
रो न मेरे देश—

बापू मांगता है आज
तेरी शक्ति तेरा प्यार
अपने हाथ दोनों खोल,
कौन है यह वृद्ध उठ कर
देख ले पहँचान
गर्व से है सिर उठाता
हिन्द का अभिमान
एक दिन तम छा रहा था
और दानव पी रहा था
रक्त—

त्रस्त हाहाकार से—
रोता विकल अनबूझ
मेरा गर्व भारतवर्ष
मेरा हर्ष भारतवर्ष
था किसानों पर भयानक
रक्त शोषण

प्राण शोषण
घोर भार लगान का
था डस रहा अतिकाय,
और करता था भयद
अपमान मानव-मान-मर्दन,

किन्तु पशु सा जी रहा था
भूल सब अभिमान;
और वह मजदूर
पिसता विकल घुनसा त्रस्त,
जीवन एक सूना घृणित

अंधा घोर कारागार,
तिमिर में कीड़े बने से
चल रहे थे कोटिजन
चुपचाप—
निर्बल दीन से
निर्वीर्य्य काले पाप,
गरजते थे कुलिश नभ में
औ' करोड़ों
फूंस के ये झोंपड़े
करके विदीर्ण प्रहार से
धू धू लपट झहरा रही थी
ध्वंस का भय राग,
और कीचड़ छा रही थी
भूमि पर व्याकुल गुलामों
के रुधिर से लिप्त
घुट रहे थे कण्ठ में स्वर
और उर में सुबकते थे
राष्ट्र के चीत्कार,
कौन उस दुर्मंथ तम में
अभय देकर चेतना विश्वास
टिमटिमाता दीप ले
तूफ़ान में आया
अकेला जाग !
झुक न पाया शीश जिसका
बिजलियों की मार से भी,
और जनता गा उठी थी
खोल अपनी आंख,
झुक गये तूफ़ान लेकिन
बुझ न पाया दीप !
और कारागार में भी
घुट न पाया
सत्य मानव की विजय का
गीत !

हो गई थी भोर उस दिन
और करवट बदल कर
था उठ गया इतिहास,
रात के अन्धे तिमिर के
उड़ गये थे श्वास,
उमड़ता था सिंधु सा
इस हिंद का विक्षोभ,
तड़प कर रो रो उठा था
क्रूर अत्याचारियों का क्रोध,
किन्तु जनता का प्रबल विश्वास
दब न पाया
मिट न पाया
और काले दुर्ग की भय नींव
जिस पर रक्त के थे दाग़
थहर उठती थीं विकल सी
क्लीव !
हौंक से ही कांपता था लौह
रक्त का अभिशाप उस दिन
मुक्ति-रण में जो दिया था तोल
हाट में कुर्बानियों की
कौन करता मोल
बुझ रहे से दीप में
फिर पड़ गये थे प्राण,
और होकर व्यर्थ
भींगी रक्त से वह पाप की
तलवार
रो उठी थी कुण्ठिता अवरुद्ध;
भड़क उठ शोले तड़पते
ज़िंदगी की आग,
गरजते बाग़ी गुलामों
का विकट प्रतिशोध
काटता साम्राज्य की
वह लौह की दीवार;

याद है वह नग्न पावों
की प्रतिध्वनि—
वाहिनी जो मानवी
अभिमान की थी केतु
गूंजती थी घोष भर अविराम!
देखता था स्तब्ध हो संसार।
हो रही थी गोलियों की मार
फट रहे थे वस्त्र
हड्डी टूटती थीं
बह रहा था रक्त
कुचलते थे देह को जब अश्व,
भूख से व्याकुल पड़ी थी मात,
तोड़ते थे दम विवश वे
दुधमुँहे लाचार,
और जेलों में भयानक दण्ड
कोड़ों का विकट आघात
किंतु फिर भी ये निहत्थे वीर
दब न पाये थे किसी से;
दांत तल में अंगुलियों को
दाब कर संसार
विस्मय से उठा था बोल
धन्य ऐसा देश,
धिक रे पाप के साम्राज्य,
जन जन
था उठा धिक्कार;
ज़ालिम का अँधेरा
छा गया था घुमड़ उस पर आप,
हम गये थे जीत!
जन गये थे जीत!!
यह करोड़ों अगन जीवन
कृषक औ' मज़दूर
वृद्ध के पीछे चले थे,

और लोहे को किया था खण्ड
सारा दम्भ करके चूर,
सत्य पथ पर चल
गये थे जीत !
रक्त से भींगे हुए उस शीश—
बाल रवि की दीप्ति—
का किया था
विश्व ने नतमाथ
अभिवादन !
विश्व के विस्तीर्ण पट पर
अगन सेनाऐं चली हैं
विजन में अनजान सी
वह विकल रेखाऐं बनी हैं,
किंतु उनमें थी पिपासा
सत्य का था ह्रास,
एक यह विश्वास था
जो ज्योति फूटी—
और जन जन हिंद का
था जगा निद्रा छोड़,
युग युग के अपावन
तिमिरवत् अज्ञान को तज
हंस उठा था हृष्ट,
जागरण की वह महत्तम
लोर···
जनता के लिये
किसने गुंजाई बोल !
आज वह इतिहास
अपने आप संमुख चल रहा है,
किंतु तब अनजान थे हम,
आज सारा मुक्ति का संग्राम
अपने रक्त से ही सींच—
हमने है उगाया वृक्ष !
घोट कर भी दम, न हमको

नष्ट कर पाया भयानक
पाप—
विष बुझे वह तीर—
फेन से अपने फलक
हैं घिस रहे पाषाण पर
अभिशप्त;
ओ अमरता !
अमर जनता !!
देख—
मांगता है आज फिर से शक्ति
बापू मांगता है तुम उठो हुंकार,
हो उसे विश्वास—
वह अकेला ही नहीं है
हैं करोड़ों आज भी तो साथ,
एक लक्ष्य महान पर सब
जो, कि सेना और सेनापति
हुए हैं एक
आपस में न कोई भेद,
फिर उठे यह गूँज—
कायर है न भारतवर्ष
हिंदू और मुस्लिम
आज सब हैं साथ !,
बापू को वचन दो आज—
सेनापति न हो तू मौन
देखें रोकता है कौन ?
जन जन में रहेगा प्राण
तब तक हम न भूलें आज
अपना ध्येय है निर्द्वन्द्व;
तू है—
क्योंकि हम निर्बाध
तेरी शक्ति,

हम हैं, देख,
हम पर सदा धर विश्वास ;
करोड़ों बाहु से हम रोक देंगे
सिंधु की भी बाढ़--
हम तू एक !
खुल न पायें नाव पर अब निराशा के पाल,
हम भयानक समीरण की
दया पर ही छोड़ दें क्यों ?
हाथ में पतवार लेकर
काट देंगे सिंधु का उन्माद,
राष्ट्र से वह वृद्ध बढ़ कर माँगता है भीख,
देश के हित और मानव हेतु,
चाहता है जागरण का स्फूर्ति का नवगीत;
धमनियों में मुक्ति का नव रुधिर जागे नाच,
शपथ है--
साथी !
हमारे वक्ष में है रक्त,
इस गुलामी के अँधेरे
को मिटादे यह उषा का रंग ;
सारा देश तुझको देखता है हार मत ओ वीर
फिर उठाले आज झंडा और चल उठ धीर।
पीछे देख
टूटेंगे अनेकों सिंह
तेरी वाहिनी के लाल--
तेरी शक्ति--
जनता की अमरतम शक्ति
भारत शक्ति
जग की मुक्ति--
बन्दी !
जाग !!!

मांझी

रे भीम लहर दोला बन कर
उस महामरणसी क्रुद्ध सबल,
इस एक तरी के आरोही
बैठे हैं रूठे मौन विकल
विक्षुब्ध पवन है चिल्लाता
है काँप रहा जीवन निर्बल

माँझी तू फिर पतवार उठा !
तूफान भयानक झुक जायें

ले सदियों की गौरव गाथा
तेरे हाथों में डोल उठी
घन अंधकार के पीछे से
वह स्वर्णिम ऊषा बोल उठी
तेरे इंगित की चिर गरिमा
दुख के सागर को तोल उठी

सेनापति फिर हुंकार उठा !
तूफ़ान थहर कर थम जायें

घर घर में टूटे स्वर घुटते
अत्याचारों की धार बही
इस महाराष्ट्र की सत्ता को
दानवता है ललकार रही

युग युग के चेतन दीप उठा !
घर घर आलोक मंदिर छायें

तू फिर से अपना चरण उठा
पल भर में पथ नप जायेगा
तू फिर से झंडा फहरादे
जन जन मिल मिलकर गायेगा
तू बाँह उठादे अभयंकर
साम्राज्य विकल थर्रायेगा

हम अंगारे होगये स्वयं
क्षण भर में भय को दहकायें

क्या भूल सकेगी यह दुनियां
बलिदानों का जलता गौरव
ले बोल उठा इतिहास सजग
हैं धूलि बने लाखों कौरव
हम अन्ध कलुष का मर्दन कर
अब स्वर्ग बना देंगे रौरव

पर्वत में ठोकर मार अजय !
हम महातिमिर को छितरायें

जन जन का गर्जन एक वही
तेरे स्वर में प्रतिध्वनि करता
आबाल वृद्ध शिशु नारी नर
सबके नयनों में तू पलता
नंगी मानवता के वैभव
क्यों आज स्वयं तू ही हटता

बापू ! तू फिर से मुस्कादे
भारत में जीवन जग जायें

सेतुबंध

शक्ति लग आहत पड़ा है आज भारत
रो रहा है राम सत्यों का प्रदर्शक!
भूल मत संजीवनी है आज जनता,
रावणों का ध्वंस ही है लक्ष्य प्रेरक ;
सेतु बांधेंगे अतल पर धीर निश्चय
आह ये पाषाण भी चिल्ला उठे हैं,
मुक्ति केवल मुक्ति का गंभीर गर्जन
दे रहा आह्वान कण-कण गा उठे हैं।

सुमेरु

अपमानों का यह भय प्रहार,
विक्षुब्ध तिमिर का विकल पाश
मेरे दुख का यह कटु प्रसार
दृढ़ करते हैं मुझको प्रति पल
जीवित भारत की अमय श्वास

दुख आते हैं बादल बन कर
पगतल मेरे विश्रांत बिखर
खंडित हो निर्बल जाते झर,
तेरे विश्वासों का प्रसून
धुल-धुल कर करता सुरभ लास

होगी इस मानवता की जय
अंतिम असाम्य की होगी क्षय
अभिमानों का है अंत प्रलय,
लहरों में भटकी ये नौका
तट पायेगी—जीवन प्रकाश

ये रुद्ध करोड़ों का विषाद
क्रम-क्रम कर होगा दूर-जाग !
सिर ऊँचा कर, मत कभी हार,
प्रतिपल विद्रोही की पुकार
गूंजेगी बन अविरत विकास

चुनौती

मैं नहीं मांगता भीख कभी
मैं हूँ अपनेपन में महान
अक्षय है मेरी यह संस्कृति
मेरा है निर्भय अमृत गान

चट्टानों से टकराती हैं
लहरें अबाध लहरें प्रबुद्ध
तब मैं ही तल में लौट चलूं
हो जाऊँ तम में भीत रुद्ध ?

जल रहा अवाँ है सांय सांय
गिर रहीं उसी पर रक्त बूंद
इतनी परवशता पाकर भी
मैं ही लूँ अपने नयन मूंद

तोड़ो कारा के भयद द्वार,
निर्माता ले फिर से पुकार

जागो दधीचि की अमर अस्थि
फिर से सुरत्व का मूल प्रश्न
सामूहिक शक्ति पुकार उठे
होजायेगा वह वृत्र भग्न

❀

इस जीवन के तार, मानव !
लें फिर फिर झंकार

अमल प्राण की निरवधि बेला
मत कह तू है आज अकेला
क्रय विक्रय का मत कर मेला

तू साहस मत हार, मानव !
अक्षय है यह धार

मरण पराजय, जीवन जय है,
जीवन भी तो एक प्रलय है,
संघर्षों का दीप्त निलय है

फिर से आज पुकार, मानव !
जग को आज दुलार

❀

प्रिय मेरे जीवन का बसन्त,
है नहीं मजारों पर अपने
फूलों का धरना हो उदास,
लोहू पीने वाले को लख
हुंकारों से कम्पित करना
जग जग में भरना कुह्लास।
क्या यही समझते तुम अबतक,
रोने से हँसते हैं शहीद ?
क्या ज्वालामुखि भी कभी हुआ,
ठंडा नीहारों से सभीत ?

जिनकी अंगुली शृंखला बनी
ग्रीवा पर है बन लौह दंश,
उनके विध्वंस को अमर शक्ति
पतझर तक हो जाए बसंत,
रे महामृत्यु के दरवाजे पर—
कीलें घृणित गुलामी की—
विष का पानी है चढ़ा हुआ—
बन कर पिशाचिनी भयद भूख
मैं नहीं तरसता कभी देख
चन्दा नभ में होकर उदास,
अंधियारे में करता उसकी
स्मृति अपने में ले एक आस ॥

लहू

लहू की भोर
लहू की साँझ

अरे घायल जीवन यह आर्त्त
विकल करता है हाहाकार
विवशता का अंधियारा घोर
डूबता है जैसे संसार

एक क्षण को सारा इतिहास
रोक कर अपनी व्याकुल श्वास
देखता मानव का गतिरोध
बन गया है सत्ता का पाश

कोयला है जीवन। की लाज
धधकती दहक रही है आग
भस्म करने लोहे का मान

तप उठी मिट्टी बन कर आग
अंगारों सी मानव की शक्ति
कट रही किन्तु नहीं नत शीश
एक ही आशा पर सब स्फीत

प्राणमय भोर
मृत्यु हो बाँझ

भस्मनाद

भाग्य के अंधकार को चीर
रक्त की रेखा बनी प्रदीप्त
आज भारतमाता की माँग
चमकती है गौरव से स्फीत

बुझाने आता है यह दीप
अरे बर्बरता का तूफ़ान
और घुटता घुटना अविजेय
गरजता है मेरा अभिमान

लगी है आग दहकते प्राण
जल रहा है सोने का देश
भस्म में मिलने को है आज
ज्ञान का कोष, सत्य का वेष

आज गुरुदेव-भस्म है हाथ
शपथ है बढ़ न सके वह शत्रु
भस्म में से आती है गूंज—

राष्ट्र की रक्षा करना पुत्र!
आज भी मैं हूँ तुममें व्याप्त

रहे यह स्वतंत्रता का गान
करोड़ों सूत्र बनो तुम एक
अणोरणीयान् महतोमहीयान्

———

आक्रमण

एक दिन हूणों की वह सैन्य
आगई ग्राम प्रान्त में साँझ
और अभिमानों से हो अन्ध
मांगने लगी ठौर अति दृप्त;
आर्य्य निःशस्त्र, पराजित शक्ति;
बौद्ध, ब्राह्मण औ' जैन अनेक
नहीं थे एक—

किन्तु फिर भी संस्कृति का मान
नहीं झुकने देता दुर्दम्य।

घरों में हिनहिन करते अश्व
खूंदते थे पृथ्वी विभ्रांत
भग्न गौतम की प्रतिमा एक
रक्त में पड़ी हुई थी मौन
होरहा था भीषण संग्राम
छटपटातीं थी ललना बद्ध;

रात में जब सब था निस्तब्ध
अंधेरे में कुछ घायल आर्त,
टिमटिमाते तारों का शून्य
झूरहे थे रे अस्तःप्राय,
घरों से उठता था कुछ धूम
और वह खोया हुआ सतीत्व

नारियों का भरता था दाह,
बालकों की मृत विकृत देह
पड़ी थी अब केवल निश्चेष्ट,
उधर मंदिर, मठ सबसे एक
बिना आधार
गगन आरोही धूम्र विनाश
उठ रहा था अभिशप्त प्रगाढ़
भूमिपर सनी रुधिर से धूल
घहरता था सुनसान अबाध;

जल गया था द्वैपायन शब्द
जल गया था नागार्जुन वाक्य
जल चुकी थी निर्ग्रन्थ पुकार

पूछता हूँ क्या राजा शक्ति
बचा पाई थी प्रजा महान!
आज भी क्या हम इन पर किन्तु
रहें निर्भर औ' जायें रूठ?
हमीं में है वह ऐसा प्यार
कि होजायँ हम आज अटूट

❀

इस कर्मक्षेत्र में मिल जाता
जन जन होजाता एक एक
मैं तू का विभ्रम खोजाता
होकर स्वतंत्र उठता विवेक

तेरा अंतस बन जाता है
अगणित प्राणों का मुकुर मात्र

फैलादे आत्मा के ये कर
भर जायें उसमें मनुज मात्र
किसलिये प्राण असहाय बनें
जो सूनेपन की करें खोज
तू अंतरात्मा कहता है
वह जगजीवन की शक्ति, ओज
गौतम की गूंज रही पुकार
यह आत्मयातना नहीं अन्त
मानव के सत्यों का विकास
पतझर में लाना है वसंत

ब्लैक आऊट

बज उठा दूर साइरन निर्भय
हुँकार उठा ज्यों काल पुरुष
बुझ गई ज्योति, काले बादल
सहसा ढँकलें ज्यों, इन्द्रधनुष

जैसे सिंदूर जगमग विधवा के
सिर से धुलता हाय हाय
मुंह बाये तम बरसा बेसुध
रे घुमड़ा हँस हँस महाकाय

यह महासभ्यता का पोषक
रे महानगर तम में व्याकुल
जिसमें ऊमस की बेचैनी
अंतर को करती है विह्वल

मरघट सा यह सुनसान नगर
गीदड़ी आर्त्त स्वर सा व्याकुल
लगता है जैसे डूब गया
मानवता का बजड़ा बोझल

अभिभूत हृदय, व्याकुल मानव
भीषण विषाद, निर्बल जीवन
सत्ता की तृष्णा का बुखार
है चुका रहा श्वासों का ऋण

रेंगते आदमी सुपनों से
बन कर टटोलते कीट जंतु
केवल कल की आशा पर ही
गति है अब तक चलती परन्तु

यह कोलाहल काशव विमौन
घुट घुट कर बंदी सा रोया
वैभव अपने निश्वास रोक
निर्जन भय से कंपित खोया

वह एक दीप जो मानव गति
का युग युग से संभार रहा
बुझ गया, हंत ! जैसे गुलाम
का शब्दहीन संहार हुआ

यह घोर गहन है अंधकार
जिसमें मानव का अहंकार
फूटती ज्योति को ढँक ढँक कर
घायल सा उठता है पुकार

वह दूर झोंपड़ी दो दो फिट
पशुओं की जैसी भयद खोह
जिसमें पिसता उठता पुकार
परवश मानव का प्रबल मोह

यह किसके सुख की माया है
किस महापतन की खाई है
यह किसके सोने के प्याले
की रुधिर भरी निठराई है ?

वह अंधियाली बीतेगी ही
मानवता भी विजयिनि होगी
हत्याओं की भीषण गाथा
इतिहासों में बंदिनि होगी

फिर होगा नव प्रकाश उज्वल
फिर एक दूसरा हो स्वतंत्र
पशु बल को करके त्रस्त ध्वस्त
फिर महाशांति का गुंजे मंत्र

१० मार्च १९४२ .

शोनान

जब ऊषा की स्वर्णिम आभा
झलकी सागर की लहरों पर
तेरे दुर्धर्ष तटों पर था
बर्बर जय जय रव घोष मुखर

कल सांझ एक उन्माद दंभ
नतशिर लड़खड़ विध्वस्त हुआ
जिसके शव पर यह पैशाचिक
नूतन कोलाहल मत्त हुआ

हारा मानव घायल मानव
था राष्ट्रहीन सा भू-लुंठित
बलि पशु सी रुधिर उगल जनता
साम्राज्य वेग करती कुंठित

दासों की नींव भयानक थी
रक्षित न हो सकी आबादी

स्वार्थों में धोखा दिया किये
ये पश्चिम के साम्राज्यवादी

जो थे निरस्त्र वे बधे गये
चीत्कारों पर गोले बरसे
बर्बर फ़ासिस्टों के अंगार
मानवता पर गिर गिर दहके

वैभव की थी यह भूख अमिट
भीतर से सत्ता को ढँकती
अत्याचारों की भीषणता
मानव का सुख कुचला करती

यह विजय नहीं है मानव की
मानव तो बंदी है केवल
हाहाकारों चीत्कारों पर
हँसते हैं आंखें मूंद महल

हैं ढहा रहीं कच्ची भीतें
रे आज पराजय व्याप रही
मानव की श्रद्धा निर्बल हो
अभिमान बहाती हार रही

राष्ट्रों की पल भर जीत हार
वर्गों के ये निष्ठुर विलास
पल भर के हैं, जो बह जाते
भर काल लहर की अमिट प्यास

शोनान ! आज तू विजय दर्प
से चमक रहा बन शोला क्यों ?
बुझ जायेगा पागल क्षण में
गिर गया घरौंदा कल का ज्यों

है अभी नहीं सूखी पृथ्वी
रुधिरार्द्र हुई कण कण कलुषित

अब भी गुलाम में प्रतिहिंसा
अपराजित मानवता जीवित

पाटलीपुत्र खंडहर केवल
रे रोम गिर गया था निर्बल
ये आग विवश कुचले मानव
की फूट चलेगी कर विह्वल

तू भूला है ये दुरभिमान
ही तेरा ध्वंस दिखायेगा
पर लहरों सा स्वतंत्र मानव
उस गत खंडहर पर गायेगा

मानव है ध्रुव सी कीर्ति अटल
वह महासत्य का दीपक है
जलता है जलता ही होगा
वह चिर स्वतंत्र, चिर जीवन है

बरमा में

वह मरा पड़ा पथ पर औंधा
मुख से बहते हैं खून झाग
जगमगा रहा है जोपानी
बर्बरता का जलता सुहाग

छा रहा धुंधलका था, बिजली
तोपें थीं धूंआ उगल रहीं
घायल जनता की भय चीखें
थीं नगर शांति को निगल रहीं

जल जल उठते थे घर उदास
बन महाचिता थे धू धू कर

वीभत्सा थहराती थी मन
उस अँधियाले में हू हू कर

नीरव चंदा निष्प्रभ नभ में
ठग आया था सारे जग को
छायाओं से तम गहरा कर,
सुलगन उठती थी रह रह रो

विस्फोटों में ज्वालाएं मिल
उस महानगर को बहलातीं
जैसे ज्वालामुखि गरज उठा
आशाएं भटकीं चिल्लातीं

हमले के पहले सब निर्बल
निर्जीव बने थे रहे देख
हाटों के कोनों में लुक छिप
बातों का भयमय हेरफेर

पर उस दिन नभ से बरस उठे
अंगार धरणि को फाड़ फाड़
ज्यों मिट्टी नभ को छूलेगी
या महाकाल का जला भाड़

सब कांप उठे अभिभूत हृदय
बैठे थे सिर पर धरे हाथ
साम्राज्यवाद के कांटों ने
घेरी मानव की मुक्त राह

मेघों की रगड़न से निकली
बिजली ने ध्वस्त किया मानव
दो सूखे पेड़ों का घर्षण
बल उठा, हरा जंगल, प्राखद

कल तक मानवता के तन को
थीं जोंक चूसतीं, किंतु आज

मां का वक्षस्थल कर विदीर्ण
दानव पीता था रक्त लाल

सैनिक विजयों से मत्त, हहरती
हवा बने, घर द्वार तोड़
भीतर घुस आये, नयन थके,
हीरों को देता कौन छोड़ ?

हो विवश बालिका कांप रहीं
थीं एक पुरुष तन से छिपतीं
जिनकी पीली आंखों में थी
अंतिम घड़ियों की छांह पड़ी

ले गये खींच सैनिक उनको
यौवन था जो अभिशाप घोर
नारी का तन भी पाप हुआ
विक्षोभ तड़पता था अछोर

नर बौराया सा रहा देख,
सहसा पथ पर ध्वनि गूंज उठी—
'भैय्या !' फिर गूंजा अट्टहास,
रौद्रता भयानक झूम उठी

वह दौड़ पड़ा पथ पर, लेकिन
होगया धड़ाका, सभी शेष,
उस गये राज्य सी लघु कराह
सूने में तम की बनी रेख

केवल विनाश का धूम—नृत्य
मानव के हाहाकारों पर
विस्फोटों में पगध्वनि करता
था, घहर उठा गुंजित अंबर

वह मरा पड़ा पथ पर लेकिन
उसका बदला लेना जरूर

अत्याचारी के अहंकार
को करना होगा चूर चूर

ऐवैक्युई

स्टेशन,
भीड़,
पूरी गरम,
आगरे का पेठा,
पान बीड़ी सिगरेट
लोहे की पटरियां
धूंआ छोड़ गाड़ियां
कुलियों का शोरगुल

थके से मुसाफ़िरों की हाय हाय
और कुछ बूढ़ियों की कांय कांय
ऊब चला खड़ा खड़ा
कभी कभी एक आद
खूबसूरत 'दौंकल'
मुस्कराती सी शिथिल
दीखती है और चल
भीड़ में ही हो विलीन
छोड़ती है साथ मेरे
एक कोमल याद क्षीण

और मैं चुपचाप
सिगरेट के अक़ीरी छोर
को दबाये,
खींचता कश
फेंकता धूंआ उमड़ता,
जवानी की टीस भीतर

जल रही है,
और वे अरमान
आज ऐसे ही निकल कर
वायु में घीरे हुए लयमान

एक काली सी मगर कुछ तन्दुरुस्त
मैं कहूँ मादा अगर तो ठीक ही
पास आ मेरे—बड़ी ही बदहवास
कह रही है कुछ, न समझा मैं जिसे
चाय वाले को चुका पैसे तभी
मुस्कराया देख कर उसको तनिक,
इशारों से ही बताया झट उसे
मैं न समझा कुछ कि क्या वह कह रही

प्लेटफार्म गूंजता है लहरता,
कूकती है रेल कोई लड़खड़ा।

समझ में आये न आये क्या उसे
कह रही है जो उसे कहना बचा
गौर करता हूँ समझ पाता नहीं—
कभी बंगालिन, कभी गुजरात की
कभी मद्रासिन, कभी मैसूर की
कभी कोई—और लगती क्या नहीं
मगर उसका हाथ फैला कह रहा—
देश से या जाति से है क्या तुम्हें
पेट तो जग में सभी का एक सा

कुछ कुली हैं देख उसको हँस रहे
एक बोला आरही रंगून से
लाश पर धर पाँव अपने, खून से
भीगती, भूखी, मरी सी आँत है
आप बाबू दे सकें कुछ दीजिये
आदमी इसका मरा बम से वहां

जबकि जापानी उड़े थे जोर से,
एक लड़की थी, मरी वह राह में
भूखसे रह रह तड़प कर बांहमें
फेंक उसको भी बची यह रह गई
चाहती है नौकरी ही मिल सके···

और देखा आंख में पानी भरे
देखती मुझको समझ कर सेठ वह
मैं मसीहा बन गया कुछ देर को,
फेंकने सिगरेट गया जब 'डस्टबिन'
तब सुना कोई रहा था कह, उसे
जो समझती थी न, सुनती गौरसे—
बोल क्या लेगी न शर्मा बोलरे,
और फैला हाथ नारी ने दिये

अगर पत्थर की कहीं पर मूर्ति हो
नग्न नारी की, सभी हैं देखते,
और फिर वह तो खड़ी थी सामने
जागती, जीती, जरूरत से झुकी
सोचता हूँ, और 'केल्नर' में वहां
ऐंग्लोबर्मीज औ अंगरेज कुछ
हाल में आये हुए हैं हार कर,
देश से भी अधिक अपने आप को
बचाना समझा जिन्होंने जरूरी,
खा रहे हैं, पी रहे हैं, मस्त हो;
एक उभरी ऐंग्लोबर्मीज की
बाँह पर सिर टेक कर अंगरेज वह
मुस्कराता सा चढ़ा व्हिस्की रहा

एक है जापान
बर्बर और है शैतान
वह है झूंठ का उल्लास
वह है पाप का अभिसार;

विन्ध्य में जब राम ने
देखी तपस्वी और मुनि की हड्डियाँ,
जो नित्य ही उन राक्षसों से त्रस्त थे
प्रतिज्ञा की थी--कि मैं उनका सतत
वध करूँगा, सोचता हूँ मैं थकित
और ईसा के चरण पर सब दुखी
कथाएं कहते रहे निज दुःख की
सोचता हूँ मैं उसे आश्वास हूँ
किन्तु साहस ही नहीं होता मुझे,

एक गोरे
एक काली
अस्थि दोनों आँत दोनों
रक्त दोनों, माँस दोनों
पराजय औ' स्वार्थ दोनों
देश का बलिदान भूले
एक चरते मत्त बैलों से निडर
दूसरी है माँगती कातर बिखर

क्या करूँ मैं सोचता हूँ
जेब में कुछ भी नहीं है।
चल पड़ी वह सामने से
जो कि बरमा से चली है हिन्द आई
उसे कितनी देर लगती राह चलते ?

राह में हैं पेड़ मिलते रेल मिलती
घर नगर इंसान मिलते
एक चलता खेल उसकी जिन्दगी है,
कान में आवाज आती
रेल आगे बढ़ गई है
एक वह ऐवेक्युई है.....

तुलसीदास

राष्ट्र था अभिभूत
सांस्कृतिक तम छा रहा था घोर,
और भीषण निराशा का
भयद अट्टाहास,
दिगदिगंतों में दलित फिर
त्रस्तजनता के विकल उस आर्त्त
श्वास को झकझोरता था मुक्त।

ज्ञान अपने खोल दोनों हाथ--
माँगता था भीख हो निरुपाय,
स्वर्ण की उस चमक से थे बन्द
नयन युगयुग से प्रतारित आज,
धर्म अपने पंख नभ में तोल
उड़ रहा था शून्य के कर सांध,
साधना के जाल में वह लुप्त
अंध सागर में पड़ा निर्वीर्य्य
छटपटाता था शफरि सा दीन
तब अनेकों बिंदु के संवर्त्त,
मेघ सम तुम सिर उठा कर दीप्त
गगन में गरजे भरे नव श्वास,
छिन्न तुमने कर दिया वह पाश,
अरे वज्र प्रहार से वह वृत्र
विभव के भयफेन में हो बद्ध
कर उठा था रुद्ध सा चीत्कार।

कट न पाये शब्द वह उन्मुक्त
जागरण का वह सजग आह्वान,
गूंजता था प्राण जीवन त्रास

आज भी है गूँजता अविराम—
'लक्ष्य है बस एक,
आज मर्यादा पुरुष है ध्येय,
दुष्ट भंजक,
दीन रक्षक,
विकल पीड़ित को जगादे,
और अत्याचार को कर बद्ध
डुबादे अतलांत में निःशेष।'
अब्द लुढ़के हैं लहर से मौन
पर अरे चट्टान पर के दीप!
दूर तक किरणें रही हैं फैल
और लहरों में उमड़ती रोर—
'जब धनुष लोगे उठा तुम हाथ,
कवे तुलसी! तब झुकेगा माथ!'

मुक्तिनाद

स्वर्गीय पिता के अंतिम शब्द—

अरे बांध क्यों रखा मुझको
मुझे मुक्त होजाने दो
मुझे महामृत्युञ्जय की लय
फिर से अब दुहराने दो

मरण नहीं है मेरा कोई
अपमानित पथ रोने को
गति की यह अजस्र धारा है
यहां नहीं कुछ खोने को

जर्जर तन है, धुंधली आँखें
भीगी पलकें, रुद्ध हृदय

किंतु अभी साहस है मुझमें
देखो लौटा मीत 'प्रलय'

जब कोई भी साथ नहीं था
तन्तु तन्तु 'में' आग' लगी
तब भी मुझमेंही जीवन की
अबुझ शिखाकी दीप्ति जगी

यह परंपरा कभी न टूटे
इसका मुझको गर्व सदा
यह अभिमानीशीश अभीतक
दैन्य भार से नहीं झुका

जितने पाषाणों ने पथ में
अपना हाथ उठाया था
उन्हें तोड़कर, शीश मग्न कर
मैंने पंथ बनाया था

कहे अरे कोई तो बोले
कहां पराजय जीवन की
रन्ध्र रन्ध्र निर्माण शक्ति है
कहां अरे क्षय मानव की

प्रबल पताका जिसकी आगे
युग युग गगन भेद चमकी
हुंकारों से नष्ट होगई
काली छायाएं पथ की

पिंजरे में यह रह न सकेगा
मुक्त विहंगम अभिमानी
सागर के दुर्भेद्य तिमिर को
चीरेंगी किरणें ज्ञानी

ऊर्ध्वश्वास मत कहो अभागे
मैं नूतन बल जोड़ रहा

जीवन रथको नूतन पथ पर
मैं सशक्त हूँ मोड़ रहा

गूंजे भैरवनाद तिमिर में
बस प्रकाश से टकराए
जिससे आत्मा की तृष्णा में
केवल यहस्वर भर जाये—

अरे बांधता कौन मुझे है
मुझे मुक्त हो जाना है
मुझे मरण के शव पर अपना
जीवन गीत सुनाना है।

और लोहा

स्फोट !
आज यह फौलाद
का सा अमर साहस
शक्ति हम में भर रहा है,
विश्व में चलता प्रभंजन
अग्नि पथका चल रहा है,
है हमें विश्वास
विजयी हम रहेंगे हम रहेंगे
यह उमस के मेघ आगे
एक दिन जीवन भरेंगे !

खुल गई है आँख
मुर्दे उठ गये हैं
सितमगर के चरण उठ कर
रुक गये हैं,
आज वे साम्राज्य-हाथी
शीशनत कर
झुक गये हैं।

एक दिन जिन राह कर
क्रांति चले थे
धूलि से संसार ढँकते
आज उन पर विश्व जनता
मुक्ति दीपावलि मनाती,
भेद तम वह गल रहे हैं।

देख
दुनियां की पटी पर
खेलते हैं चित्र नूतन
एक नव निर्माण के नव
स्वप्न रह रह जग रहे हैं!

मांस्को में जो खड़ा है
मौन—
अपनी तीव्र उंगली से
दिखाता सितमगर का पाप,
खून जो निर्बल तनों से
बह रहा था
हो गया क्यों आग?
आज जीवित रूस
गाता है विजय के गीत,
मिट गये वह पाप,
वह तम के भयानक शाप,
दुःख के अचलायतन!
पल रही उस हाथ को
मृदु छांह में नव बेलि!

लाल झण्डा, लाल तारा,
लाल सेना घेर उसकी
वह समाधि हृदय हृदय की
आज अभिवादन रहे कर,
पंक्तियों में चल रहे हैं—

वह गरीबों का मसीहा
दीप सा अब भी चमकता,
क्रान्ति के इस कठिन पथ पर
एक आशा बन दमकता,
ठोकरों से ध्वस्त कर वह
रुद्ध कारा मानवों की—
मुक्ति पथ जो दे गया है,
अगन तारे देख, पृथ्वी
लघु हमें ज्यों लग रही है.
आत्म गौरव को जगा
संदेश नूतन दे गया है।

महादेशों से विभाजित
सिन्धु फिर भी सम्मिलित है,
अगन लहरें ज्योति की यह
खिलखिला कर मिल उठेंगी,
और ऐसी ज्योति होगी
मनुज की संसृति सुहागिनि
चिर समान दुलार देती
हँस उठेगी।

कारखानों और खेतों
से सलामी आ रही है,
आज पिछड़े देश
सबके साथ अपने
क़दम धरते चल रहे हैं,

एक है उल्लास सब में,
शत्रु सबका रक्त शोषक,
विश्व है मेहनतकशों का,
एक और स्वतंत्र हैं सब;
गा उठा है आज उज्बेक
आज किर्गिज गा उठा है,

ईंट ईंट अभेद्य दुर्गम
पर निरंतर उठ रहा है।

युद्ध
राजावर्ग के
सामंत, पूंजीवादियों के
स्वार्थ की अठखेलियों का
एक निष्ठुर रूप !
जनता का नहीं बन्धुत्व
कोई तोड़ सकता,
विश्व संस्कृति मेल करती
बढ़ रही है···

आज
नवयुग के सुदृढ़ उस
वक्ष पर बीती हुई उस रात की
फिर श्रेष्ठता, जो शेष—
करती है अमर विश्राम
सदि का दुर्भेद्य तम
है टूट कर अब
अस्त सा अभिशप्त—
पैरों तले पड़ा निर्जीव।
सैकड़ों वे मील करके पार
मानवता बिछाती फूल
गाती आ रही है गीत

शत्रु के वे दीप
सहसा जग उठे हैं,
चमक है, वह आज
बुझने के जरा पहले थिरकती,
अब न वह दिन शेष
अब मानव रहेगा दास

देख
वह क्रेमलीन जिसमें
एक दिन थे जार,
जनता भूख से अभिभूत
करती थी प्रबल चीत्कार,
जिनकी गूंज सी मीनार
से छम छम रही ध्वनि फैल,
छाया था तिमिर का भार,
आज बैठा है वहां
मजदूर
वह मजदूर का बेटा
कि वह मजदूर दल नेता

देख
उसकी वाहिनी के
सामने बर्बर उखड़ता
भागता है आज
वह विजय का मान
बनता है युगों की लाज !

आज
टीटो की नवलतम सैन्य
की पगध्वनि अभी तक
सहारा तक गूंजती है
और साम्राज्यी गगन में
एक चहका सी जली है

आज
हर मजदूर को
ललकार
मिल कर एक !
आज जनसेना उठी है
शस्त्र की झंकार
सबकी एक !

ओ गुलामी से बुझी
तलवार
रक्त से धोना पड़ेगा
आज यह अभिशाप !

बाप ने तेरे बनाई
कल यहो दीवार मिल की,
भाइयों ने खून से
सींची विकल हो नींव जिसकी,
और तेरे बाजुओं पर
शान पैदावार जिसकी—
वह नहीं तेरी कि जिस पर
ज़ोर तेरा ?
काट तेरा पेट बाँधा आज घेरा ?

आह मेहनतकश जहाँ के
एक से मजलूम हैं हम,
भूख से मरते रहे हम
और प्याले भर रहा तू ?
चाँद रह रह हम बनाते
और काले कर रहा तू ?

देख
तेरे नाज़ की
विकराल छाया— जर्मनी,—
जो देख काँपे राज्य जग के
मार कर ठोकर मिटादी
आज, हां मज़दूर ने ही,
सिकुड़ती ही जारही है
रक्त की वह भयद गाथा,

और
वह दिन आगया है
बिगुल जनता का बजा है,

साम्य औ 'आज़ादियों का
फहरता झंडा उड़ा है,
देश के मजदूर कर्षक

बाँटते मिल बोल अपने
पालते हैं पेट सबके,
और वह कुत्ते जिन्होंने
स्वार्थ के सम्मुख बने ग़द्दार

उनका तोड़ कर मुँह घृणित काला
युगयुगों की दलित नारी

मुक्त करके,
वह दूषित जंजाल

वेश्या के मिटाये !

बिजलियों की मार सी इस
भूख ने तड़का दिया संसार,
चारों ओर हाहाकार !
ओ ज़माने की धधकती आग

तू मजदूर
तेरे हाथ ने जो गढ़ बनाये
हैं उन्हीं में आज शाहंशाह

तानाशाह !
और वह तारे जिन्होंने
राह थीं अब तक दिखाई,
हिंद
सोते हिंद में भर
जान—ऐसी तान गाई,
रोशनी से जले दीपक,
सितमगर के वार ढाये,
आज वह हैं जेलमें ही !
जंग लगती जारही है

आज उस शमशीर में जो
कल चमकती लपलपाती ?

फिर शपथ कर
फिर शपथ कर
हम न दब पाये कभी भी,
और दुनिया देखती थी—
एक दिन गढ़वाल गूँजा,
एक दिन मदरास गूँजा,
बंग, वह गुजरात गूंजा,
हिंद गूंजा, हिंद गूंजा,
आज जिसकी प्रतिध्वनि से
हिल गया साम्राज्य सारा।

सैकड़ों बरसों रहा जो
बर्गवाला सूर्य्य शोषक
आज निष्प्रभ मलिन ठंडा
गिर रहा है मग्न रोता;
याद रख यह देश
उसका है कि जिसकी
मेहनतों पर बन सका है,
वह रख यह विश्व
उसका है कि जिसकी
मेहनतों पर पल सका है,

और जब संसार के
मजदूर और किसान पीड़ित—
आज बदले का भयानक
खून आंखों में लिये अब
बढ़ रहे हैं—

देख लेना तू कि वह जापान,
जिसकी वासना का ताप
झुलसा सा रहा है हिन्द,
घोंट कर तेरा गला
फिर से बना कर दास
बांधेगा विभीषण पाश ?

बुद्ध प्रतिमा रँग गई है
चीन शिशुओं के रुधिर से,
घिर गया है मनुज अपने
अंधकलुषों के तिमिर से,
और पशु सा कर रहा है
वार,
पूंजीवाद का दुर्दम भयानक
वह कठोर पिशाच—

कट गईं थीं उंगलियां
तब भी उठी तलवार,
एक की लगा आवाज़ !
एक धक्के में गिरेगा
लड़खड़ाता सा विकल साम्राज्य

एक ऐसी राह
हाथ फैला कर न कोई
मान बेचेगा जहां पर,
रोटियों का दास बन कर
मर न पाए अन्न जहाँ पर,

याद रख इक्कीस !
पके की झलक वह मात्र !!
आत्म संस्कृति का विशद पथ
बना पायेगा जगत में
एक केवल जन समाज !

चिन्ता

कौन है व्यक्ति नहीं जो केन्द्र
किन्तु केवल अणु है निर्व्याज
नहीं कोई अपने में पूर्ण
सत्य की धारा अचल प्रवाह

खड़ी है सेना आशापूर्ण
दे रही है तुझको आह्वान
निराशा क्यों फिर तुझमें वीर
परीक्षा है यह अग्नि महान

चला फिर अक्षौहिणि तू चेत
सभी का लेकर चल विश्वास
दूर हैं जो उनको ले साथ
सिंधु पर हो पत्थर का पाश

करोड़ों हैं जब भूखे आज
नहीं क्या राष्ट्र हो रहा शुद्ध
पाप का प्रायश्चित महान
कर रहे हैं यह अगणित बुद्ध

नहीं है तू जब एक मनुष्य
ध्वजा है स्वतंत्रता की लाज
राष्ट्र देता है आज्ञा आज—
'छोड़ दे साथी यह उपवास'

व्यक्ति का निर्माता है एक
हमारा सामाजिक व्यवहार
अरे यह दानवता है स्वयं
उसी निर्बलता का उपहार

स्वार्थ में हैं जो मानव लिप्त
डुबाये कीचड़ में सब सत्य
उसे बाहर लाना है आज
यही है कर्मयोग का गत्य

विश्व का जिसमें है कल्याण
वही है पूर्ण ज्योति निष्काम
और कोई भी सुख का भद्र
स्वयं है कच्चा और अकाम

अल्प हैं हम क्षण भर के पांथ
विश्व ही है चलती ये धार
व्यक्ति है केवल पथ की दीप्ति
अरे जनता है स्रोत—प्रकाश

नहीं देवालय में भगवान
सत्य है शोषित जन के पास
कसौटी मानवता की एक
वही जनजीवन शक्ति विकास

व्यक्ति का इस समाज में पूर्ण
आज लय हो संघर्षों बीच
व्यक्ति के बंधन से है परे
मुक्ति का युद्ध—अथक संगीत

न होगा तू, तब भी यह युद्ध
चलेगा लेकर तेरी गूंज
अरे तेरी स्मृति देगी खोल
सभी बंधन जो देते रूंद

आज ये तेरी सारी शक्ति
शक्ति है युग की—मुक्ति विकास

नाव तूफ़ानी झटके खाय
और मांझी हो जाय उदास ?

नहीं तू आदि, नहीं तू अंत
परिस्थितियों का पथ सुविलास
क्रमिक आस्पद भी तो है क्रांति
कह रहा यह मुझसे इतिहास ।

प्रसार

सबको आलोक किरण देता
उस रवि को है विश्राम नहीं
सब को जलधारा सींच रही
उस गंगा को आराम नहीं ?

यह गति ही चेतन सर्जन है
लय में जो मुखरित गर्जन है
मिट्टी में अंकुर किन्तु गगन
छूने में भी अनजान नहीं ?

गहरा है जीवन अन्धकार
उससे भी नीला मरणभार
यह हार जीत या प्यार घृणा
यह स्वार्थ कहां परिणाम नहीं ?

यह क्रम क्रम का मधु संचय है
धृतराष्ट्रों का जो संजय है
क्या आज महाभारत में ही
कल्याणों का जयधाम नहीं ?

गीत

टेम्स हो या हो यांगसीक्यांग
वोल्गा हो या गंगा हो
सबकी एक लड़ाई है
दुनिया की आज़ादी की

सिंहद्वार पर बर्बर नाद
आह विकल तू क्यों अभिभूत
जग रे हिंदुस्तानी जाग
आंधी वह बरबादी की

क़ौमी जंग में चल बढ़ चल
क़ातिल का दम आज कुचल
दुनिया की जनता है साथ
राह यही आज़ादी की

दुर्दिन

एक गिरि उन्नत दीर्घाकार
सामने तू उसके चुपचाप
सोचता है क्या यह जलधार
गिर रही जो विभक्त हो आज
नहीं हो सकती मिल कर एक ?

किंतु बापू यह धारा वेग
दो नहीं, हैं ये अगणित धार,
अनेकों लहरों का संघात
मिल गया और बनी हैं धार,
धार जो अब भी लहर अनेक

बदलती गति में अपना रूप
मिलेगी ज्योंही नूतन भूमि
विभाजित होजायेगी और।

किंतु जल तो जल ही है एक
कहीं उथला या कहीं गभीर
कहीं पर तेज कहीं पर धीर
कहीं गँदला या कहीं प्रशुद्ध
चल रहा, स्तर पर निर्भर रूप

एक दिन पायेगा जब सिंधु
महोदधि में केवल जलराशि
गहन गंभीर अतल निर्बाध
फेन सा छाजायेगा हास

आज भारत में हैं दो धार—
एक हिंदू औ' मुस्लिम अन्य,
किंतु इनमें भी अगणित भेद
शनैः जो होजायेंगे साफ़
मिलेगी जैसे जैसे भूमि।

व्यक्ति का वह पूर्णत्व विराट
जहाँ वह औ' समाज हों एक
जहां कर्त्तव्य और अधिकार
बनें समरसता का आधार
वही है इस मानव की दौड़,

ज्ञान किरनों से खिल कर मुक्त
छोड़ कर अपने सारे भेद;
विश्व मानव होगा रे एक;
किंतु वह दिन है दूर!

आज प्रतिधारा का कल्याण
इसी में है वह बहले मुक्त

क्योंकि गति का स्वच्छन्द प्रवाह
बनायेगा सबको फिर एक!

मेघ के झरने पर क्या दुःख
कि झर जायेगी ऊमस ताप?
और पृथ्वी पर गिर कर वारि
खंड हो जायेगा लाचार?

अरे पृथ्वी पर जीवनदान
वही जल करता निस्संदेह!

किंतु क्या रुकती है जलधार?
बदलने वाली सृष्टि अपार!
महागति से ही सुन्दर लास
यही सुलझन का सामंजस्य!

गुलामी का ये दुर्दिन आज
मिटा कर, होंगे हम आज़ाद!

कहानी

'एक घर के प्राणी हम आज
अरे घर अपना स्वयं महान,'

'किन्तु मानव के हित है ठौर
हमीं हैं अस्ति नास्ति परिमाण,'

कह रहे दोनों भाई,
घोर

मच रहा हाहाकार विराट,
और घर में खाता था चोर,
द्वार पर दस्यु रहा हुंकार !

न समझे दोनों अपनी बात
बदल कर शब्द न बदली बात
फूट की चिनगी हो स्वच्छंद
चाटती थी भीतर का काठ

हवा चलती थी होकर मस्त
लग रही थी घर में अब आग
किन्तु दोनों ही बैठे रूठ—
मानलो पहले मेरी बात !

उठाता कौन द्वेष से लाभ ?
किसलिये द्वार बन्द हैं खोल !
सिखा कर स्वयं गया तू भूल !!
किन्तु घर किसका है यह बोल ?

राष्ट्र की पुकार

बापू बोल बोल बोल
यह है देश की पुकार
जिन्ना बोल बोल बोल
यह है देश की पुकार

सोने की उस बंगभूमिमें
मचता हाहाकार
मानवता से टकराया है
कंकालों का ज्वार

बापू·····!
जिन्ना·····!

अरे देश की लोकशक्ति के
बल पर तुम आजाद
विपदाओं के यह पहाड़ अब
तोड़ो जल्दी आज
बापू·····

सदियों का यह चित्र भला क्या
मिट जाएगा हाय ?
क्या ? परदेसी के धोखों में
धुल जाएगा हाय ?
जिन्ना·····!

देशभक्ति की गंगा जमुना
मिल न सकोगे आज
दुख का बंजर हर न सकोगे
आजादी की लाज
बापू·····!
जिन्ना·····!

दुश्मन के बममार फाड़ते
युग युग के अरमान
एक साथ दम तोड़ रहे हैं
रामू औ' रहमान
बापू·····!
जिन्ना·····!

आज करोड़ों की आशा की
तुम दोनों पतवार
रूठे मांझी ! हाथ चलाओ
डूब रही है नाव

बापू.....!
जिन्ना.....!

तड़कती बेड़ियां

आज़ाद न होगा हिन्द !
—भला यह हिन्द !!

जब हिंदू मुस्लिम जाग उठे
दोनों मिल कर ललकार उठे
—आज़ाद.....

लोहू से तेरे भर भर प्याले
जो अब तक हँस हँस पीता था
महलों पर बादल मँडलाए
लो काँप उठा वह रिन्द
—आज़ाद.....

भारतमाता के हाथ हैं दो
दोनों ने ज़ोर लगाया है
ले देख, समंदर थर्राये
भाई भाई का नाता है
—आज़ाद.....

लो हिंदू मुस्लिम गरज उठे
वह दो पहाड़ हैं सरक उठे
घाटी में घुस जो लूट रहे
भिंच कर पिस जाएंगे निर्बल
हिल उठे हिमालय दो दो अब
घर घर में व्यापी है हलचल

—आज़ाद

यह लोहे की दीवार भला
कोई कैसे तड़कायेगा ?
तूफ़ान का सिर भी टकरा कर
लोहू से भरा छितराएगा
—आजाद.....

तू आज निराश हुआ है क्यों
यदि सबके झंडे अलग उड़े
ले हरा, तिरंगा, केसरिया,
जन जन के अरमाँ अलग उठे

मत भूल
मत भूल
लोहू से है माँग चुकी सारी
भारतमाता की यह छाती
इस लोहू की परछांई में
सब रंगों को मिलना होगा
भालों की नोंक बने सबको
दीवार बना बढ़ना होगा
आजाद.....

कमजोर हुई हैं जंजीरें
बुझती साम्राज्यी तदबीरें
अब हाथ उठा
अब क़दम बढ़ा
—आजाद.....

अमर गीत

चालीस करोड़ों की पुकार
रे गुंजित अगजग मलाबार,
लो एक झलक जल उठा तूर !

दो वृद्ध आज
चढ़ रहे पहाड़ी पर श्रम कर
कन्धों पर लेकर घोर भार,
चट्टानें पगतल कांप रहीं
डगमग पाषाणों का उभार,
जो नींव धर रहे युगजीवित
रे अचल धीरतम अनुपमेय,
यह ताज मृत्यु का एक गीत,
रे किंतु पिरैमिस जनता जो
निर्माणित करती सतत जाग
साम्राज्यवाद की 'ममी' यहां
दफना देंगे अब निर्विवाद;

हम नहीं घृणा से गलित काय
हम नहीं भूल सकते अभेद
हम क्षमा क्षमा की निर्बलता
से कर न सकें कुंठित विवेक,
कब अन्धकार के पाशों को
कर सका क्षमा जीवन प्रकाश ?
सत्ता, विनाश की शृंखल में
अवरुद्ध रहे चालीस कोटि
निर्जीव वनस्पति सी सत्ता
अब सह न सका रे मलाबार
आश्वासन देता है रह रह
जीवन जीवन की है पुकार

डूबता हुआ यह राष्ट्र आज
फिर फेंक उठा है सबल हाथ,

आया आशा का प्रबल ज्वार
नव जीवन के उठते जहाज़
आ रहे तीर चल कर अथाह !

साम्राज्य बने ढह गये मूक
बन उये गीत अगनित अमोल
पर गा न सके अवरुद्ध कँठ
ऐसे दिन आये बार बार,
दुहराना वैभव नहीं किंतु,
इतिहास हमारा साक्षी है
पैरों पर लोटे नहीं सिंह ।

संध्या की यह वेला उदास
नीरवता में गतिलय समीर—
पीपल की मर्मर रही गूंज
जैसे निस्तब्धा खींच खींच
श्वासों में भरती गहन नींद
वेदना त्रस्त यह विश्व रुद्ध
कब देख सका यह रूप मुग्ध
कल तक केवल यह विसुध मूक !

जीवन के यह सारे विषाद
छाया से भाग रहे अपार
मैं देख रहा हूँ निर्विकार

वह घोर पाप
अत्याचारी के भयद कलुष
थरथरा रहे हैं स्वयं आज
रे महा घृणा में अपनी ही
काली छाया में भ्रमित शाप ;

दिन नहीं दूर···
वह बच न सकेंगे कभी देख,

रे महामृत्यु के पाशों में
अपनी ही तृष्णा के गुलाम—
अब अग्निशिखा चालीस कोटि
ज्वालामुखि होंगी—
एक···एक··· !

उनके दम्भों का कालकूट
रे नहीं पियेगा महासिन्धु,
अस्वीकृति में तूफान वेग
फन फटकेगा भर घोर क्षोभ
उनके वैभव का प्रेत त्रस्त
लहरों की ठोकर खा अशक्त
भटकेगा अपमानित अनन्त···

हम आदि चेतना रन्ध्र सदृश
रे मर न सकेंगे कभी मुक्त
बिखरापन ही है एक मृत्यु ;
हम झिलमिल शक्ति केन्द्र अपना
गुञ्जित करदें वह मुक्त राग
यह आदि नियम
जीवन अनंत
अपराजित बालक का हुलास

झंकृत होता है मलावार
बजता भारत का तार तार
प्रतिध्वनि करती अपनी पुकार
उन्मुक्त अरुक रे नहीं पार
गुञ्जित है सारा विश्व आज···

रे मलावार !
लिख रहा आज पुलकित भविष्य
तू स्वतन्त्रता का नव प्रसार ?
ओ सहस्राब्द की महाशान्ति

भारत की 'मक्का' नव प्रकाश !
चालीस करोड़ों की आशा,
चालीस करोड़ों की पुकार,
ओ अमर राग !

दहकता गात

टूटता है वह तारा दूर
छोड़ती रात घेनरी श्वास
गुलामी से जलती है भूमि
चाँदनी से जलता आकाश
सुब्ध है मेरी आशा मौन
धधकती ज्वालामुखिसी आज
मांगती है लाखों का खून
अरे फिर आजादी की लाज

आह भारत का राम गंभीर
लिये लक्ष्मण को अपने साथ
सिंधु तट पर युग युग से मग्न
कर रहा था तप घोर अबाध
आज लहरों का था वरदान
रक्ष नहीं पाया वह आधार
अरे कब थी वह लंका दूर
कँप गये क्यों फिर दोनों हाथ ?

कस दिये जब वीणा के तार
क्यों नहीं आई फिर झंकार
चढ़ाया जब भीषण गांडीव
क्यों नहीं आई फिर टंकार
घुट रहा बन कर ठंडा क्रोध
आज जनता का हाहाकार

किंतु फिर भी जीवित अभिमान
सत्य की जय का है विश्वास

करोड़ों विकल गुलाम अधीर
तिमिर में उठते हैं हुँकार
कौन सी थी वह ऐसी बात
फूल जो हुए आज तलवार ?
दासता से भी कलुषित नीच
कौन सा था वह ऐसा भार ?
दाँव पर रखा भूखा राष्ट्र
कौन सा था वह ऐसा प्यार ?

रुक गये पथ पर चलते चौंक
देखते अचरज से मजदूर
त्रस्त माता के स्वर में कंप
स्वप्न क्षण भर होते हैं चूर
रोक कर आल्हा का वह गीत
व्यथित होते हैं दुखित किसान
एक कब्रिस्ताँ पाकिस्तान
एक मरघट है हिंदुस्तान

बोल बंदी की शृंखल आज
लौह से भी न कटेगी बोल ?
एक जीवन का हमको गर्व
कि जिसका है आजादी मोल ?

अरे क्या पका हुआ वह आम
भूमि पर नहीं गिरेगा अंत ?
कौन सी है वह नंगी डाल
न छाया जिस पर कभी बसंत

चल गये पथ पर लाखों किंतु
उन्हीं के झंडे अपने हाथ
उन्हीं के साहस से हम दृप्त
उन्हीं का रक्त हमारे माथ
गूंजते अब तक उनके गीत
गरजते हैं यह अपने कंठ
अरे जो आयेंगे कल जाग
सुनेंगे धरती में से छंद

कौन कहता मैं हूँ गतिरुद्ध ?
और मेरी वाणी लाचार ?
कौन कहता जीते गद्दार ?
आज मेरा जीवन है हार ?
कौन कहता कुंठित करवाल ?
हुआ खाली मेरा तूणीर ?
कौन कहता मैं अस्तः प्राय ?
सिंधु सा मेरा दुख गंभीर ?

कदम फिर भी आगे है एक
देख पीछे हटना है पाप
कैदियों में कैसा संघर्ष
अविश्वासों की गहरी छाप ?
शपथ है आजादी की राह
हड्डियों से देंगे हम नाप.
आग में तप जो होता शुद्ध
वही सोना क्यों चटका आज

चला जो आजादी की राह
नहीं लौटेगा मुक्त प्रवाह
बीच की कैसी भी चट्टान
भग्न कर देंगे हम निर्बाध
मृत्यु की महराबों से गूंज

शहीदों की आती आवाज़
रक्त से भींगे झंडे फहर
उठाते हैं अपनी ललकार

सूर्योदय

करवटें लेतीं लहरियाँ सो रही हैं
मौन हो अनबूझ सा दुख ढो रही हैं
और मैं चुपचाप तम में देखता हूँ
तारिकाएं म्लान हो हो खो रही हैं.

एक क्षण जैसे प्रसव की पीर है यह
युग युगों के विश्व की तस्वीर है यह
एक क्षण जैसे हृदय की वेदना पर
विकल स्वप्नों की पराजित भीर है यह

तार बिजली के अभी भी हिल रहे हैं
इस धुंधलके में उजाले जग रहे हैं
सो रही है एक करवट जो निराशा
आज उसके मूल रह रह हिल रहे हैं

आज लो आकाश प्रत्यंचा चढ़ा कर
भूमि पर है लक्ष्य धर कर मौन आतुर
रूप में कर्त्तव्य के ऐसे फुरैरे
कौन देता है मुझे रह रह उठा कर

मैं दुखी हूँ क्योंकि यह संसार व्याकुल
किंतु मेरा क्षोभ है उन्मुक्त हलचल
डूब जाओ ओ सितारो तुम अभागे
तिमटिमाना ही तुम्हें है एक संबल

सोचता हूँ है कहीं वह देश भी तो
सो न सकते रात में भी वे सुखी हो
तार ऐसे धूलि में हैं बिखर जाते
स्वार्थ की नागिन डसा करती उसी को

रक्त है कुछ कुछ छलक आया गगन में
जागरण की लोर सी जागी विजन में
रात भर दीपक जला वह बुझ रहा है
खून से भींगा हुआ सिर उठ रहा है।

अपमान

कैसी कारा में बैठा हूँ
जो चलफिर कर भी आज बन्द
हथकड़ियों की झन झन में से
ध्वनि आती है—'मन हो न भंग'

बन्दी हैं ये चालीस कोटि
फिर भी क्यों डरता लौह पाश ?
'स्वामी' की छलना में भूला
दासों से थर्राता विषाक्त

कह उठा कौन—'बन्दी ! प्रकाश
से जीत सका कब अन्धकार !
जनता की लहरों के संमुख
कब ठहर सका है अहंकार ?'

मेरे प्राणों में गूंज रही
युग युग की वह निर्भय पुकार

कह गये जो कि पूर्वज मेरे—
है असत् स्वयं ही एक हार

सुन रहा भयानक कारा के
उन लौह सींकचों के पीछे
उस चपलसिंह की वह पगध्वनि
है गूंज रही तम को चीरे

जल रहा हृदय, अवरुद्ध सर्प
सा पटक रहा फन वह गभीर,
उस महासिंधु सा गरज रहा
फिर भी है अपराजित प्रवीर

घनघोर मेघ के पाशों में
रे छिप न सका वह ज्योतिकन
कर रहा प्रतीक्षा है अब भी
थर्राता जिसको देख मरण

इन भुजदण्डों में वही रक्त
इन हुंकारों में वही शक्ति
खोलेंगे कारा के वे पट—
मांगता राष्ट्र है आज मुक्ति

ये जो सहस्र शत शव अबाध
कारा में सड़ते आज फूल
सभ्यता सुन्दरी के पट पर
चुभ रहे आज हैं बने शूल

एक एक कील आजादी की
साम्राज्यवाद के घृणित कफन !
को, भिगो रक्त से, मूंद रही,
कर नवल शक्ति का महासृजन

---

† [illegible]

साम्राज्यवाद—पाषाण बांध
हम आज ग़ुलामी का विषाद
केवल अतीत के महासिंधु
में सबल डबाएँ निर्विवाद

सूने नयनों से गगन देख
हम रह न सकेंगे आज मौन
जो मुर्दों में फिर सांस भरे
हम ही हैं वह—है और कौन ?

क्या मानवता की छाती से
मिट सके कभी वह कील-द्वारा ?
क्या हसनैनों की हत्या से
घुट सका सत्य का प्रबल श्वास ?

क्या दर्शन का वह दीप्त सूर्य
विषपान—तिमिर में सका डूब
रुधिराक्त शीश आज़ादी के
वह एक शृंखला है अटूट

यह टूट न जाये तार आज
बन जाये ऐसी रज्जु एक
कैसी भी अंधियारी बाँधे
होकर प्रकाश की स्वर्ण रेख

जलते दाग़

मैं कैसे भूलूं शूलों को
कब तक रोऊँ हारा हारा
लो मेरा मौन पुकार उठा
अरमान हुआ है अँगारा

वह दिन आंखों में जलता है
ज्वालामुखियों का दाह बना
जिस पर घायल चीत्कारों का
वह रक्त सना आवरण तना

था देश क्रोध से पागल सा
घर घर में था विक्षोभ जला
तू उधर हुआ बन्दी, सबके
फूत्कारों का था तीर चला

अपमान हुआ था भारत का
जन जन में जोश उमड़ता था
अत्याचारों के विष से अब
था रक्त खौलता हुँकारा

जब यह सारा संसार सतत
पशु बल से जूझ रहा पल पल
जब जनता के इस्पाती तन
पर लोहा भी झुक व्यर्थ विकल

तब शीश उठा कर भारत में
मानवता का आलोक जगा
इस अन्धकार के पापों को
दिखलाने की थी एक स्पृहा

क्या कहा कि कण्ठ न बोल सके
क्या सुना कि मन चीत्कार उठा

उन निरपराध जन-सेनानी
का पाश हमें ललकार उठा

इतिहास न भूलेगा लेकिन
अपमानों की यह घोर व्यथा
है लिखी रक्त से भारत ने
बलियों की मुक्ति ज्वलंत कथा

क्षण भर को तम सा छाया था
अवरुद्ध रोष था चीख उठा
मानवता के मृदु अङ्गों को
पाशव बल सहसा भींच उठा

भूलें भटके थे छले गये
चालों में चतुर शिकारी की
केवल प्रतिशोध उमड़ता था
दासता दबाती भारी सी

है याद साँझ थी रक्त वसन
हम खड़े निहत्थे महाधीर,
हम थे सहस्र अगणित, मिल कर
थे बोल उठे, रे नहीं भीरु !

पर टूट पड़े थे अश्व लिये
दंडों का जो करते प्रहार
वह छिन्न न कर पाये हमको
थी शक्ति नई, था महासार

थे रहे कुचलते अश्व किन्तु
हम थे अबाध निर्भीक बने
दूना भर देते थे साहस
वे मुक्त शीश जो रक्त सने

क्या कहूँ कि मन चिल्लाता है ?
मैं माँग रहा हूँ न्याय आज
हो जाय ध्वस्त साम्राज्य किन्तु
फिर भी न रुकेगी यह पुकार

जब घिरी पड़ी थी यह जनता
गोली चलती थी अन्ध; मौन
शत शत अपराजित खड़े रहे,
पीछे हट जाये आज कौन ?

नभ में भीषण ध्वनि गूंज उठी
घहराई टकरा हुई लीन
पर पृथ्वी पर आजादी का
झण्डा खूं से था गया भींग

संसार देखले यह नर पशु
अपने को कहते हैं मानव
मैं पूछ रहा--क्या आजादी
मांगना पाप का छाया शव ?

जब सिंह पड़े कारागृह में
जनता पर होते थे प्रहार
कुत्ते बाहर दुम हिला हिला
थे चूस रहे हड्डी-विकार

सामाज्यवाद की मरण भेरियों
से गुञ्जित था बार बार
संसार व्यथस्त था गरज रहा
फट रहा कुहर का घोर भार
मैं नहीं कहूँगा अब कुछ भी
कह रहा स्वयं जन जन अधीर
लोहे की अँगुली भी मानव
के सत्य शब्द कब सकी भींच ?

प्रतिशोध

मेरे शब्द हैं तलवार
रह रह जागता है क्रोध,
ऐसी शक्ति ऐसी आग
काटें यह घृणित प्रतिरोध !
जलता है सभी तो आज
सबमें दीखता अपमान,
हँसता ध्वंस है उन्मत्त
रौंद कर त्रस्त हैं अरमान;
फट जाये हृदय का बाँध
धू धू जल उठे अभिमान !
रह रह आरही
हर कोण
से केवल वही आवाज़
साथी
हिद की हुँकार
गुंजित घहरती है मुक्त !

आज मेरे
सामने हतभाग,
नारी एक है असहाय,
बालक एक है मृतदेह,
विगलित पुरुष है गतश्वास,
कौन देगा जिंदगी का
आज वह प्रतिदान
पूछता हूँ पीर का
होगा कहाँ अवसान ?

और अत्याचार—
झंझा बन जगाते

ज्वाल सा वह क्रोध,
नारियों की नग्न देही
पर हुए थे क्रूर
भीषण वार;
बच्चों को कुचल कर
धूलि में,
चीत्कार बन कर
घोर अट्टहास,
बाँध कर वे पुरुष—
जैसे क्रीतदासों पर कभी था
वार होता,
लगाते थे आग—
ज्वाल नभ तक गरजती थीं
झुलसते थे वृक्ष
मचता विकट हाहाकार।
बलिया
या कि जलियांबाग!
किंतु
पशुबल कर न पाया
ध्वस्त,
सचमुच कुचल कर भी
रुंद कर भी
कर न पाया अन्त
मेरे हिन्द के अभिमान का—
मानव खड़ा था मुक्त
भींगा रक्त से,
जर्जर वसन औ' क्लांत
घायल देह
अपराजित खड़ा था!
देखता था!!

दे रहा था फिर चुनौती
'आ' नहीं खोया अभी यह सत्व,
यह तो सिंधु है
जिस परविकल हैं व्यर्थ,
सारे वज्र भी निरुपाय;

गिर रहे थे बम गगन से
जल रही थी भूमि
सूने धधकते थे ग्राम;
नारियां असहाय
नीचे कर रहीं आक्रन्द,
सुन रहे थे बाप
बच्चों के विकल चीत्कार,
शोले गिर रहे थे—
दंड था वह !

मार कर भड़का दिया था
और रक्षा को उठे जन।
होगया वह पाप ?
हम न बोलें ?
क्योंकि जलता सत्य—
स्वार्थ के तम का घृणित
अवसाद
देगा खोल !

धूलि में आहत पड़े वे
मौन भग्न किसान,
सामूहिक दिये थे दण्ड
कोड़ों की पड़ी थी मार—
बूढ़ी मात की जब पीठ
का था खींच डाला मांस,

था दिया उपहार—
नारी को मिला वैधव्य—
माता को दिया था
बालकों का खून,
युवकों का हुआ था
एक निर्दय
बधिर कत्लेआम;

कौन
पशु को सिखायेगा—
बोल, मानव मोल ?
क्या है ज्योति ?
क्या है शांति ?

दे रहा जो अन्न
भूखा खेतिहर वह आज,
जो बदलता विश्व
भूखा है वही मजदूर'
क्या उन्हीं को दाब कर
होगी यहां सुख शांति ?
कुचल हमको
कौन कर लेगा यहां पर राज ?
और धन बल व्यर्थ हैं
जनता नहीं यदि साथ।
कौन रोकेगा भयानक आग ?
साथी वज्र होजा आज !
हम अब तक अजेय महान् !

उफान

अंबर
धूम में है लीन,
पृथ्वी हो गई है लाल,
व्याकुल हैं दिशा अभिभूत !

भूख से व्याकुल पड़ा है देश—
अस्मत बेचती हैं नारियाँ अभिशप्त—
दर दर फिर रहे हैं बाल—

क्या कहूँ
फुटते हृदय की बात ?
हड्डियों का ढेर
जिस पर ललकते हैं गिद्ध,
भूमि राजा बेच अपने खेत
पथ पर दम रहे हैं तोड़,
गूंजती हैं आह ! कठोर कराह—
सारा देश है मुहताज !!

होरहे हैं घृणित वे षड्यंत्र,
शूल के फलक करते तेज—
मेरे राष्ट्र के संस्कृति-विटप
की काट देने मूल—
जिसको है उगाया
सींच हमने रक्त से निर्व्याज
विष फैला रहे हैं आज—
माता का अमोल सुहाग
रखने गुलामी के
नीचतम उस हाट में
निर्लज्ज !

इधर मरते हैं करोड़ों
घर नहीं है, मान खोया,
बसर करते घृणित कुत्तों
सा पराजित मग्न जीवन—
हाय सूखी छातियों में
है न बाकी ख़ून भी जो
बालकों का नरक भर दे—
क्योंकि वे राक्षस
पतित—
सब हैं दबाये
अन्न ! ! !
सारे वस्त्र ! ! !
पूंजीवाद की इस छांह में है
आज—
नंगा और भूखा देश !

हड्डियों का भयद यह व्यापार—
रक्त से भींगे हुए ले दांत
चर्वण कर रहे उन्मत्त !
क्या उतारेंगे न हम भूभार ?
आज यदि अवतार हैं तो—
ये मंजूर किसान !
आज यदि है शेष—
मानवता इन्हीं में
रह सकी है आज !

हम नहीं एकांत !
सारा विश्व आगे बढ़ रहा है,
चटकते हैं हिटलरी वह पाप।
आहें दलित जन की
हो गई हैं आग,

धू धू जल रही है
स्वर्ण की लंका !!
विजय की वैजयंती
फरफराती बढ़ रही है
लाल सेना आज—!!!
ले ! एक एक करके
दलित कुचले देश
अपना उठाते हैं शीश !
वे मेमार !!

आज हम हों मौन !
आया आज तक ऐसा नहीं
इस नाव पर तूफान--
चल रहा जो सांप छिप कर
नाव में ही—
कुचलना है आज !
हाथ फिर सब साथ होकर
खे न लेंगे नाव
इस तूफान में भी जीत ?

एक ही है राह—
आगे धर क़दम !
दो शक्ति मिल कर
भींच देंगीं बीच का यह आज !
काट कर जो वृक्ष—
उसके बीच में अटका दिया
पाषाण—
चूर करदें हम इसी को,
वृक्ष फिर मिल जाय—
आयेंगे नये तब फूल !

मुक्त होकर जाति
वह हर, प्राण का अधिकार,
सुलझेंगे समन्वय से अनेकों
जटिल बंधन घोर !
यदि नहीं हम सत्य पथ पर
क्यों सकेंगे जीत ?
एक आत्मिक शक्ति
पहला गीत !
मानवता स्वतंत्र विकास के—
पथ पर चले ले ज्योति ।
गूंजे प्यार का मृदु गीत !!

शपथ

रक्त से भींगा मेरा माथ
और घायल है सारी देह
हड्डियां किन्तु रहीं हुँकार—

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

लुटी नारी का तीव्र सतीत्व
चाहता रावण से प्रतिशोध
दिशाओं में भरता चीत्कार—

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

व्यथित मानवता कहती आज
विकल भारत है रहा पुकार
धधकती है अंतस् की आग

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

कह रहा है भूखा मजदूर
शपथ है मेरे श्रम की आज

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

कह रहा शोषित दलित किसान
शपथ है मेरे हल की आज

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

करोड़ों नर नारी और बाल
कह रहे हैं निश्चय रे धीर--
अरे सदियों के भूखे देश--

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

हमारा पथ है सत्य अनंत
विजय का हमको है विश्वास
न होगा भारत कभी निराश
एक स्वर एक प्राण आह्वान--

न कर उपवास !
न कर उपवास !!

तूफ़ान गरजता है

साथी ! मैं बोल किधर जाऊँ
अँधियारा है अँधियारा है
तूफ़ान गरजता है भारी,
मेरा मन किन्तु न हारा है—

क्यों राम-रहीम यहां घायल ?
यह किसके ख़ूँ से पथ भीगा ?
आज़ादी के मेरे चन्दा
तुझ पर क्यों यह काला टीका ?

अरमान गरजते हैं दिल में
तेरा सिर ख़ूँ में भीगा है !
चालीस करोड़ों के दिल में
ज्यों गर्म धधकता सीसा है !

तेरे चरणों के चिन्ह मुझे
अपनी ही ओर बुलाते हैं,
भीषण आँधी के पार मुझे
सुख शान्ति वहाँ दिखलाते हैं।

ज्यों ज़मींदार से ले उधार
वे दो किसान अन्धे होकर
अपने खेतों में चिल्लाते
हैं बीज फूट के बो बो कर,

इस नैया के माझी अब तक
वे अविश्वास से भरी पाल
हैं खोल नहीं पाये मिलकर,
लगते झोंके ज्यों मृत्युकाल

साथी मैं बोल किधर जाऊँ
अँधियारा है, अँधियारा है

तूफान गरजता है भारी
मेरा मन किन्तु न हारा है ।

..

शहीदों का है यह मजार
इसके भीतर से आयी पुकार
बुझ गये पर न बुझती है आग
होगा कब हिन्द मेरा आजाद

..

इस खून से भीगी धरती पर
ओ हिन्द मैं रो दूँ या हँस दूँ ?
घायल की पराजय है या जय
या बुझ न सकी वह लौ कह दूँ ?

गंगा न कभी सूखा करती
यह खून न अपना सूखा है
ज्वालामुखि को है शान्ति कहाँ
जाने वह किस क्षण फूटा है !

जिस खून से दादा भींगे थे
उस खून से नाती भींगा है
चट्टान के नीचे कुचले सुन
वह आजादी का टीका है

फूलों की बहारों का सुपना
पल आता है बिलमाता है
यह वह पत्थर हैं जिन पर झुक
पतझर गुंजार सुनाता है,

ऊपर तो अंधेरे पर गुंजित
तारों का जनाजा जाता है
सूरजकी प्यासी आँखों को
खंडित आलोक न भाता है

सागर के थपेड़ों को सुन कर
आकाश न व्याकुल होता है
है आज कसम परवाने की
दीपक न कभी भी रोता है।

मैं ग़म के तराने क्या गाऊँ
रोने को कोई ठौर नहीं
आँसू हों तो क्या, मुस्कान रहे
अरमान है कोई और नहीं।

मर रहा हूँ एक ही है आरज़ू
आज कह दो हिन्द यह आज़ाद है,
मौत होती है गुलामों की नहीं
जिन्हें जीवन का नहीं अधिकार है।
दीप बुझता है अँधेरा हो नहीं
फाड़ कर बादल निकालो चाँद को
शहीदों की बात कहेगा ले वतन
खून खरकर भी न पानी हो कभी

..

क्या घर में आग लगायेगा
टुक खोल के अँखियाँ देख ज़रा

क्या राम-मुहम्मद दोनों लड़
आपस का गला फिर काटेंगे
सीने पर दल दल मूंग यहां
शैतान क्या यों ही नाचेंगे ?

भाई पर हाथ उठायेगा
टुक खोल के अखियाँ देख ज़रा

आपस का लहू जब फैलेगा
दिल खौल उठेगा सागर का

लग जायेगी घर घर आग यहाँ
मिट जायेगा गौरव भारत का

दुश्मन ही लाभ उठायेगा
टुक खोल के अँखियाँ देख ज़रा

माँ बहिनें यह किसकी हैं कह ?
बूढ़े दादा किसके हैं कह ?
यह मिल, सड़कें, यह खेत सभी
स्वर्ग के हैं, या तेरे कह ?

दम तोड़ते हैं लाखों भूखे
टुक खोल के अँखिया देख ज़रा

वह कौन सी 'आज़ादी' होगी
जिसको कि 'गुलामी' खोलेगी ?
अपनी ही लाशों पर कैसे
अपने ही 'जीवन' डोलेंगे ?

सूखी छाती में दूध नहीं
टुक खोल के अँखियां देख ज़रा

इस सल्तनत अंग्रेज़ का दिल
जिसकी है म्यान अरे हिन्दी !
भाई के लहू में भीगेगी
तलवार वही क्या ए हिन्दी ?

तू किसको लगान चुकाता है
टुक खोल के अँखियां देख ज़रा

तू किसको बचाने लड़ता है
जब माँ की अस्मत लुटती है,
मत भूल कि बिजली है सिर पर
बारूद की तेरी धरती है,

यह ब्याज न किस का चुक पाता
टुक खोल के अँखियां देख जरा

कानों में जहर ही है तेरे
भीतर से दिल यह कहता है—
भाई के लहू के प्यासे को
उस स्वर्ग में आसन मिलता है

सेहरा औ' कफन क्या एक ही है ?
टुक खोल के अँखियां देख जरा

लानत है अरे उस जन्नत को
इंसान के खूँ पर पलती है
मजदूर किसानों की धरती
एके के बिना ही जलती है

घर के भेदी लंका न ढहा
टुक खोल के अँखियां देख जरा

शहीद

श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी

हो चुका भीषण नर-संहार
किन्तु फिरभी नभमें है रक्त
कि बलिदानों की है वह छाप
शहीदों का रंजित सिर मुक्त।
धधक उठ मेरे उर की लाज
फूट पड़ ज्वालामुखि की आग
कि गूंजे आजादी की राह--
क्रान्ति हो पग पग जिन्दाबाद,
निरपराधी गुलाम का रक्त
महासागर -- सा गरज आज
कि अत्याचारी का लघु द्वीप
त्रस्त थर्रा कर जाये कांप

उठा कर स्वर घननाद अभेद
सुनाऊं वीरों गाथा एक
लिये हड्डी की लेखनि हाथ
राष्ट्र पट पर लिखता हूँ आज
रक्त से, जलता जगमग गीत
दे रहा जो आह्वान अभीत
पुण्य भू वीरों का तन जहां
धूलि से उठा धूलि में रमा.
कि कण कण में प्लासी है जहाँ
कि जन जन घायल टीपू जहां
तड़प में जिसकी बिजली गिरी
कि मीनारों की नींवें हिलीं

कि सन सत्तावन की तलवार
मिट गई पर न मिटी झंकार

कि आजादी के बिखरे दीप
मिल गये बन कर सूर्य प्रदीप्त
हरहरा उठा पुनः यह देश
लहलहाता ज्यों सुन्दर खेत
कौन है वह किसान निर्व्याज ?
काट कर बेचेगा निर्बाध ?
विदेशी है वह अपना नहीं
जागरण है यह सपना नहीं
क्रोध से धधक उठा वह खेत
लहर पर लहर लपट का वेग

फट गया वह मेघों का जाल
गगन में पुरवैया की ताल
बज उठे द्रिमिक द्रिमिक घन मेघ
नगारे पर ज्यों चोट अमंद
कि हिन्दू मुस्लिम दोनों साथ
कर उठे असहयोग का वार
ढँक गये पथ, घर, कारागार
रक्त से भागे लाख हजार
पर न रुक पायी लहर प्रचण्ड
गरजती भीमाकार उमंग
हिल गया भीषण काला किला
लगा बस बन्धन टूटा गिरा

एक क्षण लेता था जब श्वास
थका सा राष्ट्र भरे विश्वास
कि भर कर दुगनी शक्ति महान
गिरा ही दे अबके चट्टान,
किन्तु फिर मिल न सके वे हाथ
लग गई अपने घर में आग
रक्त से भरी हुई वे आँख
घूरती थीं आपस को बांट

हँस उठा अत्याचारी उधर
जूझते भाई भाई इधर,
बिल्लियों का यह झगड़ा हाय
आ गया बन्दर करने न्याय

काँपती थीं जो सड़कें क्षुब्ध
करोड़ो चरणों में भय रुद्ध
अरे वह तो थी कलकी बात....
आज...हा...आज...हृदय फट...आज
जहाँ कल निर्भय दोनों डटे
आज आपस के भय से हटे
पड़ी थीं वे सड़कें सुनसान
गगन था उदासीन अति म्लान
कि कल गंगा का मुक्त प्रवाह ?
घड़ों में बन्द भर रहा आह ?
कि दोनों पांव न मिल कर चले
कौन होगा जिसको पथ मिले ?

छा रहा था बस ध्वंस विनाश
कान पर उगल रहे विष सांप
नगारे बज न रहे हैं हाय
बिना मांझी के डगमग नाव
देशका आज आत्म-सम्मान
विदेशी के चरणों पर म्लान
धुन रहा था सिर व्याकुल मत्त,
विदेशी हँसता था अतिदृप्त
कि यह तो मछली हैं अतिमूढ़
और मैं बगुला हूँ गुरु गूढ़
रहें लड़तीं आपस में सदा
धर्म में मेटूंगा मैं क्षुधा

इधर से राम गरज कर उठा
मुहम्मद उधर तड़प कर बढ़ा
दूर से तब शैतान पुकार

आ गया बन सबका सर्दार,
सिंह चीता थे दोनों लिप्त
इधर गीदड़ था होता मस्त,
लिया औ' हमको दिया निचोड़
दिये सब हड्डी पंजर तोड़
खेत का बिजका बना किसान
खून से देता चुका लगान,
मशीनों में पिसता मजदूर
भूख से होता जाता चूर

उठी तब निर्भय एक आवाज
चौंक कर सुनता था साम्राज्य--
भाइयो रोको अपना क्रोध
दासता के बन्धन दो तोड़
फूट के जहर नहीं क्या ज्ञात ?
पूत की हत्यारी हो मात !
किन्तु लड़ने वाले थे अन्ध
किया उस पर ही वार प्रचण्ड,
मर गया औ' न मरा वह वीर
हो गया ठण्डा क्रोध अधीर
रो उठा देश हो गया प्रलय
रो उठा आजादी का हृदय

मौन हो जा जीवन की लाज
स्तब्ध हो जा रे मन्द समीर
कांच सा टूटे यह उर आज
रो उठा माँ का प्यार अधीर
उठा कर अपनी सूली आप
मरा था ईसा भी इस भाँति
वक्ष में भी है लचकन आज
धधकते अरमानों की राख !
गुलामों की सेना उठ जाग
पी रहा तेरा रक्त पिशाच

खण्डहरों में मत कर अभिमान
मृत्यु की यह छाया असमान
भूल मत यह भीषण अपमान
जी रहा कुत्तों सा इन्सान
जल गई चिता, भग्न है कब
नहीं अब कर सकते हम सब्र
कि थी वह साम्राज्यों की चाल
चुभ रही काँटे सी यह याद
खड़े होकर करते हम आज
तुम्हारा अभिवादन हे धीर
उग रहा है जो जलता सूर्य
उसी की एक किरण तुम वीर
कोयलों के हीरे, जयगान,
शब्दभेदी तुम रश्मि बाण
खण्ड कर दो सारा साम्राज्य
उठाओ अब फौलादी हाथ
छोड़ दो अब वे टूटे गीत
त्याग दो अपना निबल अतीत
कब्र में हैं जो उनके हेतु
नहीं रचते हैं हम संसार
खेलता है जो नन्हा आज
उसी के हित सारा व्यापार
फाड़ दो गोरेपन का जाल
ढँके जो काले दिल का पाप
कदम पर कदम कि दोनों एक
कि हिन्दू मुस्लिम दोनों एक
राम का धनुष उठा टङ्कार
मुहम्मद देता है ललकार
मुहम्मद राम न रहे गुलाम
क्योंकि हैं दोनों ही इन्सान
भूख लगती दोनों को साथ

पड़ रहे कोड़े सब पर साथ,
देश का नाला सड़ता आज
बाँध कर कमर जुटाओ हाथ
आज कीचड़ करनी है साफ
क्योंकि जीना दोनों को साथ
हड्डियों की मिट जाये चिरांध
गुलामी की यह भयद सड़ांध

जेल में हैं चालीस करोड़
पिसे ज्यों गन्ने दिये मरोड़,
बहुत दिन सोना उगला किन्तु
न पाया अन्न, सदा पथ बन्द
उगाओ अब केवल अंगार
युगों का भर कर चिर फूत्कार
कि भारत की धरती पर आज
विदेशी धर न सके निज पांव
वही है अपना पहला शत्रु
कि जिस पर चिर छलना का छत्र
एक हो लोहे की दीवार
तोड़ दो शृंखल तड़के गाज

अधझुका सिर पर झण्डा आज
सलामी देता है यह राष्ट्र
तुम्हारे जीवन का बलिदान
राष्ट्र का बना आत्म सम्मान
एकता का देकर सन्देश
हो गये अमर, रक्त की रेख,
गुलामों के उर के चीत्कार!
आज भी गूंज रही झंकार!!
गूंजती भू, अम्बर भरतार
उठ रही दलितोंकी हुँकार,
जी रहे बदला लेंगे देख
बनेंगे हिन्दू मुस्लिम एक

माध्यम

यमुना कुल कुलरी फहर फहर
बहती जाती अविराम पुलक
भींगा समीर नभ के बादल
छू छू पड़ता है मुखर किलक

यह पुल फौलादी, धारा का
तन गोद गोद कर खड़ा हुआ
श्रम का ये फल उन्नति पथ में
सुरधनु सा सुन्दर आज हुआ

वह बैल गाड़ियाँ चलती है
मानव के श्रम का आदि रूप
ताँगे इक्के मोटर पैदल
गति के कितने यह भिन्न रूप

यह माध्यम सा पुल है महान
जो मानव के श्रम का अगाध
विश्वास और है सुदृढ़ मान

यह भी तो है जीवन सुषमा
यह भी है रे क्रम क्रम विकास
यह तो गति है संचय निर्मित
संहार रात्रि का सृजन प्रात

जागो जागो नभ में वे घन
जीवन देने हैं गरज उठे
बाधाओं का धारण करने
मानव जग तू भी स्फूर्ति भरे

श्रमिक

वे लौट रहे
काले बादल
अँधियाले से भारिल बादल
यमुना की लहरों में कुल कुल
सुनते से लौट चले बादल

'हम शस्य उगाने आये थे
छाया करते नीले नीले
झुक झूम झूम हम चूम उठे
पृथ्वी के गालों को गीले

हम दूर सिंधु से घट भर भर
विहगों के पर दुलराते से
मलयांचल थिरका गरज गरज
हम आये थे मदमाते से
लो लौट चले हम खिसल रहे
नभ में पर्वत से मूक विजन
मानव था देख रहा हमको
अरमानों के ले मृदुल सुमन

जीवन जगती रस प्लावित कर
हम अपना कर अभिलाष काम
इस भेद भरे जग पर रोकर
अब लौट चले लो स्वयं धाम
तन्द्रिल से स्वप्निल से बादल
यौवन के स्पंदन से चंचल
लो लौट चले मांसल बादल
अँधियाली रातों से बादल

संधि का पाप

आज सन्धि का पाप न होगा, जन-जीवन की शक्ति पुकार !
चुन-चुनकर खानों के उर से ढेर लगा है हीरों का,
देख उत्तरायण की बेला बिस्तर है यह तीरों का,
न्याय-न्याय की माँग माँगती स्नेह तड़पते वीरों का,
अरे हड्डियोंकी नींवोंपर खड़े नहीं होंगे प्रासाद !

विधि के बन्धन आज पराजित दुख से भूतल न्हाया है,
शत-शत निस्तब्धा का अन्तर चेतन ने दुलराया है,
अरे रक्त की बूँद-बूँद से हमने ब्याज चुकाया है,
आज हताहत संज्ञा जागे देख न बुझ जाए यह आग !

प्रतिहिंसा के इन खड्गों पर आज न हों कमलों के फाग,
आज फेन लोहा बन जाए उगले शत्रु पराजित झाग,
धमनी-धमनी में उच्छृंखल अपमानित भीगा इतिहास,
अरी बावरी ! पीतम जागा, गूंजा रणभेरी का नाद !

देखकि काली रात तड़कती निकल रहा रवि ज्योतिर्धाम,
शिथिल कुण्डली ध्वस्त खण्डिता निकला मणि-दीपित अभिराम,
बोलो किधर चलोगे युवको ! मुक्त कि फिर से आज गुलाम,
देख, दुधमुहोंकी किलकारी बनती जाती है चीत्कार !

इकिस बार पीटकर छाती अपमानित माँ बोल उठी--
इकिस बार ठोंककर सीना आज शपथकी रोल उठी—
'राजवंशमें धरती मेरी छूटेगी ! --यों डोल उठी :
देख कि बिजली काँप रही है रक्त-पिपासु परशुकी धार !

आज पापकी सन्धि नहीं हम सह पाएँगे, आन जगी,
आर्द्र-विनिद्रित जाग्रत बोले--टोकेंगे तूफान सभी,
धरती दरके, पाषाणों से पथ करदें निर्माण अभी,
आज रिक्तमें प्राण फूँक कर भर देंगे तारों की आग !

यहाँ भूखसे तड़प तड़प कर मरे करोड़ों वन मुहताज,
आज उठा लो वही हड्डियाँ दधीचियों के वज्र विराट,
डोले सिंहासन थर-थरकर युवको ! हो समवेत प्रहार--
खाद ! खाद दो रक्त माँसकी जागेगा मधुमय संसार !

तलवार का गीत

गाँव-गाँव औ' नगर-नगरमें आज यही ललकार उठे;
परदेसी का राज न हो, बस एक यही हुंकार उठे।
गीत सुनाऊं क्या उनको, जो गीत बनाते हैं मेरे;
अरमानों की थाह नहीं है, रोज़ गाड़ते हैं डेरे।
किन्तु हमारा जीवन तो है पतझड़ में बीता जाता;
कितना है अन्धेर कि मुँह का कौर यहाँ छीना जाता!

आज गोलियों की वर्षामें ये भूखे ललकार उठे;
परदेसी का राज न हो, बस एक यही हुंकार उठे!

सड़ती-गलती मानवताकी फिरसे जवानी है;
आज दूध का दूध हुआ है औ' पानी का पानी है।
देख लहू मेरी आँखोंमें उतर रहा है रह-रहकर,
अभी नहीं है रोटी उसकी, जिसकी शक्ति अजानी है।

अपमानों से तेज़ हुई फिर जन-वाणी ललकार उठे;
परदेसीका राज न हो, बस एक यही हुंकार उठे!

डायन है सरकार फिरंगी चबा रही है दाँतों से,
छीन ग़रीबोंके मुंह का हा कौर दुरंगी घातों से।
हरियाली में आग लगी है, नदी नदी है खौल उठी;
भीग पूत के लाल लहूसे अब धरती है बोल उठी।

इस झूठे सौदागरका यह काला चोर-बज़ार उठे;
परदेसीका राज न हो, बस एक यही हुंकार उठे।

आज जलाऊं दीप कहां मैं, घर-घर घोर अंधेरा है;
माँ! हाथोंकी ज़ंजीरोंका लोहा कितना ठण्डा है!
हमसनेनोंका क़त्ल हो रहा, ईद मनाऊं मैं कैसे?
गाँ! अकबरके लाल क़िलेपर परदेसीका झण्डा है!

हम दोनों आज़ाद रहेंगे, एकेकी दीवार उठे;
परदेसीका राज न हो, बस एक यही हुंकार उठे!

आज पपीहेकी पिउ-पिउमें टेर लगी आज़ादीकी ;
आज देशकी आज़ादीकी, रोटीकी आज़ादीकी ।
सब समान हैं इस धरतीपर, सबके हैं अधिकार यहां ;
अब मजबूर नहीं हैं हम, जो सह लें तेरी ठगबीसी ।

ले जहाज़ डूबेंगे तेरे, जब जनता का ज्वार उठे ;
परदेसीका राज न हो बस एक यही हुंकार उठे ।

ज़ालिम तेरी शान कि तूने हमको भूखा मारा है :
रोटी माँगी जब-जब हमने, तूने घूंसा मारा है ।
भोला और करीमा दोनों अब तक थे घरके भेदी ;
रग-रगमें सन सत्तावनका लोहू आज पुकारा है ।

देख करोड़ों वज्र मुष्ठियां ज्यों बिजलीके तार उठें ;
परदेसीका राज न हो बस एक यही हुंकार उठे ।

देखें, कैसे सह सकता है ठोकर अपनी आज यहाँ ?
देखें, कैसे रह जायेगा तेरे सरपर ताज वहाँ ?
अरे काँप अत्याचारी, अब आई है अन्तिम घड़ियां ;
आज बन्दनीकी रह-रहकर टूट रही है हथकड़ियाँ ।

एक तड़प औ' आज़ादीकी वह प्यासी फुंकार उठे :
परदेसीका राज न हो बस एक यही हुंकार उठे ।

!!!

आज हे अमृत ! तुम्हे मैं
व्यर्थ ही यह कष्ट देता
जानता हूँ मैं नहीं क्यों
लिख रहा हूँ गीत ऐसा

मैं कभी निज व्यक्ति को
देना महत्त्व न चाहता हूँ
सोच कुछ पाता नहीं क्यों
मैं पराजित हो गया हूँ,

निकट लगकर भी सभी क्यों
दूर मुझसे हो रहा है,
कार्य्य कारण मे बँधा
जीवन सभी कुछ ढो रहा है

किन्तु मन की क्षीण ममता
कह उठी है आज मुझसे
एक बार विपन्नता की घोषणा कर
आज हाहाकार का अपना प्रबल स्वर
सुन सभी के दूर ऊपर,
बन सके शायद यही
कल्याण अग्रिम
आज तेरे विकट पथ का।

किन्तु यह भी व्यर्थ एक
विकार सा ही भग्न लगता
मूल्य जिसका कुछ नहीं
अथ इति न उसका भार रखता,

आह अमृत !
साँझ की छाया उतरती आ रही है
आज संस्कृतिखँडहरों का

सिसकता संगीत मन के रन्ध्र में भर जाय या फिर
मैं करूँ पाषाण से ही प्यार बोलो ?

हो गया कितने पलों का
यह मलिन अवसाद सञ्चित ?
मैं भुलाना चाहता हूँ आज
यह दुःस्वप्न रञ्जित ;

आज आज्ञा दो मुझे, कुछ दो मुझे
तुम स्नेह, आश्वासन घृणा
कुछ दो मुझे, कुछ दो मुझे,

आज फिर उद्भ्रान्त मेरा मन
हुआ है,
भावना अज्ञात का हल्का थपेड़ा
लग रहा है

भूल्य है जिसका नहीं तू देख
उसका अन्त कर दे,
सोचता हूँ क्या प्रबल यह व्यंग
मेरे क्षुद्र जीवन पर कसा है,
जो कि मेरे विश्वमानव चेतना
को राक्षसी लिप्सा दिये यह
घट किए अपहृत खड़ा है,

आत्महत्या !!
कर सकूँगा आज यह
बर्बर प्रबल साहस कि
केवल भीरुता ?
घरौंदे का दास-सा अभिमान
होठों पर सके यदि खींच
केवल एक ही मुस्कान
मेरी मोहिनी का हो यही अवतार ।

हो सकेगा आह भीषण युद्ध ?
अन्त तक साहस रहेगा शेष ?
शक्ति दो, आश्वास दो,
कुछ सो कहो, मुझ से कहो कुछ
दो मुझे अपने हृदय का
अल्पतम, कुछ दो मुझे,
हे !
सत्य की चिर शक्ति !
मैं न मुँह के बल गिरा
उन आँधियों में दब कराहूँ ,
चाहता हूँ , पसलियाँ चटकें
मुझे तब कठिन हो निज
रोकना मुस्कान ।

आज मत कहना कि यह अति
रूढ़ उच्छृंखल तथा अभिमान पूरित
व्यक्ति मेरा--
और यदि है ही,
समझना आज मैं
संस्कार की उन रूढ़ियों से
एक क्षण को हो गया हूँ
पराजित ज्यों
हलाहल के उदय से
सब चराचर है मूर्छा में
चेतना से हीन--
निर्बल दीन--

जागे आज वह शिव
खोल दे करतल कि तल में
अमृत कलकल कर रहा है--
जाग !

आततायि !

एक

अरे ओ जल्लाद !
तेरी आँख के इस खून में भी
दिख रहा है इस अजेय विमुक्त
बन्दी का उठा
अभिमान-केतन शीश
फेंक मत तलवार
तेरी हड्डियों को काटती
तलवार
भी
निर्वीर्य पापी इन्द्र के बल हाथ
का है वज्र--
कैसे भी दधीचि महान का चिरत्याग
भी अब व्यर्थ ।

आह !
चाहता था मन कि
लय हो जायगा बन धूम केवल
वे पराजय की अथक
घड़ियाँ बनाती भग्न बेकल--
आज किन्तु न क्षोभ--रे--
हिमवान सा मैं देखता हूँ
गल रहा जो स्नेह है
मेरी पराजय जानता हूँ
किन्तु क्या मैं प्यार के
एकान्त में यह शीश अपना
चिर घृणा की खड्ग-धार प्रतीक्ष
पर निज
धरूँ बेबस

और अपनी दुरभिमानिनि सलजता
का भार देकर
काट डालूँ ?
रक्त की वे बूँद क्या
तृष्णा भरी चिल्ला उठेंगी
और हाथां को पसारे
किन्तु मैं क्या पा सकूँगा ?
कौन सा वह त्याग जिसमें
योग की वह कलुष छाया
रूप के मृदु माँस में लथ
है नहीं हड्डी बनी सी,
बोल री अवमान की
दासी--अरी पत्नी विवशता
योग कह दूँ,
क्योंकि शङ्कर का भयद अज्ञान
बन कर एक माया-भार
उस पर
झपटता था
टूटते ज्यों गिद्ध चिर चिर
मार ठोकर चूर ममता
कर शहीदी
की भयानक
कुत्स्य मज्जा से
ढँकी उस लाश पर झुक।

फिर कहूँ यह यातना के बन्ध
जिनको सत्य ईश्वर नाम देकर
छल रहा हूँ
जोकि सत्ता का न कोई न्याय बनते
उन्हें उनकी कलाका आवरण फाड़े
देखता हूँ... ....
कुछ नहीं है कुछ नहीं है.....

आह, हँस लूँ,
खंड कर दी आज मैंने मूर्त्ति
जिसकी भयद छाया
प्रेम बन छलती रही थी,
दासता का साहचर्य अबुद्ध
था,
मायाविनी के राग सा
ज्यों टूटता तारा गगन से
भग्न हाहाकार कर
ज्यों बन भिखारी
जा रहे सम्राट् हैं--
कुलीनत्व रुधिर लिये निज
धमनियों के पाश में....
बस ...
रँग रहे थे कल कि जिससे
विश्व
सारा धर्म जिनकी पाप-वेश्या के
लिये यौवन हुआ था
क्रुद्ध मन,
पर वाह्य आडम्बर बना सा
एक विष कन्या सदृश
मुख चूमता
ज्यों मृत्यु गीदड़ चुभा देता दाँत
अपनी आर्त्त व्याकुल
बुभुक्षा को
तृप्त करने....
आह उस भिक्षुत्वका मैं क्या कहूँगा
जो कि आत्मा या प्रकृति,
परमात्मा के नाम पर
निज हाथ फैला
दूसरों के परिश्रम का मंत्र

अपना ध्यान कहता,
नहीं वैसी भीख मेरी शक्ति
का अपमान ही है,

धन कुबेरों की भयंकर वासना का
हलाहल मैं कंठ में
धर
मानवी अज्ञान की उन
पार्वती की उँगलियों से
घेर लूँ ग्रीवा....
अरे धिक्कार !
शत शत वार !
कौन सा है रूप जिसको ढाँकने
बुर्का सँभालूँ,
मैं नहीं सम्पत्ति कोई
गलित मृत निष्प्राण
जिसको लाज कहकर
बद्ध कर दूं
खंड खंड दुरूह
होने
भार को हल्का बनादूं
धधकती है आग
लो यह भाफ ढक्कन को
हटाकर भागती है
बने बादल और
फिर गरजे गगन में
बिजलियों का रोर
अट्टाहास
जिसकी प्रबल भीषण
प्रतिध्वनि में
गिर पड़े दीवार ये

जो कलागृह के चित्र-सज्जित
भयद कारागार की हैं
बाँध !

बोल मेरी चेतना के भास--
खड़ी है यह कौन
नूतन एक
वासवदात्री, दत्ता कहो या,
कौन सा वह रूप
इमसे श्रेष्ठ !
यह वही है एक धारा
जो न सूखेगी कभी भी
अहं के अमरत्व का क्षण
कुचल जायेगा पराजित
धूलि में ज्यों
ततैया को कुचल देता
पहन जूता क्रुद्ध बालक....

अहह हाहाकार....
हँस ले हृदय मेरे--
विवश क्रन्दन से न लेकिन
भर रहा क्यों अथक बहता
सिन्धुनद सा यह
प्रबल उन्माद
कटे नख सा गिर रहा है
आज क्षण क्षण का
निलय अवसाद धूमिल
रक्त जिसका शेष
प्रेम का व्यक्तित्व
जिसका चुक गया
जो मोमबत्ती सा नहीं है
पिघलता सा

सिसकता सा
सूर्य है यह प्रखर उज्जवल दीप्त !
चाहता है जो अँधेरा
सह न सकता तेज--
हट जाये अब वही सामने से
और जीवन जागरण की शक्ति
सहने में हुआ असमर्थ
तकियों में छिपा दे ग्लपित अपना
दीन मुख बन दास !

ओ गुलामो !
उठो फिरसे आरही है ज्योति
फट रहा है अंधेरा लो,
जिस अँधेरे की कला में
स्वप्न समता का रहे थे देख
अपने हाथ में तुम दीप धरकर
देख लो वह ढाल है,
वह खड्ग है
वह पतन है....
वह कठिन रौरव, नरक, अन्धतमिस्त्र
जिसमें विष्णु, शिव औ' बुद्ध,
ईसा, मुहम्मद, जरतुश्त्र,
सूली पर टँगे हैं
और मानव से रहे हैं माँग
अपने प्राण,
जीवनदान।
घुटने टेककर चङ्गेज औ' पिचिल
झुके हैं कर रहे जयगान !
मूर्ख !
हम जयगानकी आदत न रखते पास
उससे बहलती है बुद्धि,
नशोले कवि ही करेंगे प्यार

उसमें,
विवशता की क्वीलता जिनकी
बनी है शृंखला-झङ्कार
जिनकी क्रान्ति भी है
लटों का अभिसार,
फूंक में ही जो उड़ाना
चाहते त्रिभुवन अभागे,
भीख लेते और कहते
हम न पलटें कभी करुणा पर
किसी की,
ऋन से भी हीन
ऐसे मेमने लाचार,
बज रहे ज्यों
बकरियों की खाल उनकी
बुद्धि पर मढ़ दी गयी है।
कला के वे शूरवीर महान
डगमगाते आज तो मँझधार!
उनकी नाव उनके विरोधों के
भँवर में अब फँस गयी है।

मृत्यु का वह एक भय-चीत्कार—
बन सकेगा कभी जीवन
की सृजन की शक्ति?
ला दे मुक्ति
ला निर्वाण
फूंक दूँ व्यक्तित्व का यह दम्भ
जिसने किया है शोषण अभी तक और
जय तिलक करता रहा
सम्राट् नामक पाप का ही
हन्त रे वैभव
हुई अब साँझ,

साम्राज्य न टिक सकेंगे आज
गुलामों की भड़कती है आग।

हम नहीं अङ्गार
या उन्मत्त ज्वालाकार,
हम हैं स्वयं मानव,
नहीं पी सकते कभी हम खून तेरा
विष भरा
वह घृणित गन्दा,
पर करेंगे नाश
क्योंकि हमको लग रही है भूख,
रोटियों के स्थान पर
गोली मिली ओ'—
पूछ
रक्त की यह बूंद उभरी
जो पड़ी है धरा पर तू पूछ,—
किसका रक्त है यह !
नहीं उसका सुनाता जो वेद,
या इंजील, या कुरआन—
मैकबेथ या मेघदूत प्रवीण,
किन्तु—
जो कि युग युग मर रहा है
मर इसी की भाँति,
जो लटकता ही रहा है
डाल गर्दन
शोषकों के न्याय की उस रज्जु में
हो मूक
बोलती है रक्त की यह बूंद—
मैं भले हबशी भयानक रूप से जो
गहन काले,
या दलित अस्वच्छ

हूँ, मजदूर--
तन की....
पर नहीं हूँ बाबरों या
हिटलरों की,
मैं नहीं चढ़ती रही हूँ
देवता के शीश,
धूलि में मुझको छिपा
गाये गये हैं गीत--
सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु
सर्वे सन्तु निरामया : ....

अहह ! रे उपहास !!
स्वर्ण के ही मोल बिकती
सभ्यता के नाम,
बूंद बूंद बना यहाँ है सिन्धु,
अब तो डूबने को काँपती है
नाव तेरी दीन !!

(२)

मैं पुजारी हूँ नहीं, जो
जोड़ दूं यह हाथ--
क्योंकि मेरे स्वार्थ हैं कुछ
चाहता हूँ दीन जिनकी पूर्ति योंही जाय
माँग लूं आकाश से
जो भूमि पर अप्राप्य ?
अगर बलिपशु हूँ, करूं
अभिमान मैं किस देवता पर
किस निठुर पाषाण पर,
या निराकार अभेद्य तममय
ब्रह्म पर,
अभिभूत !

जो रहे आलोक भी

पर दे न पाये ज्योति
ऐसी दिशाकाल प्रबुद्ध स्पन्दित
महासन्नासन्न छवि को
दूर से ही नमस्कार
पुकार कर मैं कर रहा हूँ
आज।

युगों से जो देखता हूँ
स्वयं लीलयमान वह भगवान्--
हटा पाया है नहीं शैतान
मेरी इस धरणि से,
इसलिये मैं कर रहा हूँ
आज यह विद्रोह,
अगर चाहे पराजित भगवान की
सेना खड़ी हो जाय
अपने साथ,
या बवंडर में अबल
हो जाय बिल्कुल ध्वस्त।
है न कोई शोक !

कौन सी है आँख
सुन्दरी या चिर कुरूपा
मृत्यु का भय दिखाकर
हमको सकेगी रोक ?
अब मुझे भाती नहीं है
सुन्दरी की रात सी अँधियारवाली
आँख
यदि मुझे तारा न दिखती
कालिमा के बीच
बादलों के बीच में ज्यों
तड़पती है बिजलियों की मार,

अब मुझे वह स्नेह भी
भाता नहीं जो
चाहता चट्टान से
टकरा बनूँ मैं फेन,
बन्धनों को लाज और रहस्य कहकर
नष्ट करना समय भी भाता नहीं है,
भरे प्यालों को उठाकर, फेंककर
फिर त्याग की छलना दिखाना
भी न भाता,
अरे यह मेरी समष्टि अगर तुम्हें
एकान्त लगती,
मूर्ख हो तुम,
क्योंकि कर करके प्रशंसा
रिझाना तुमको,
मुझे भाता नहीं है।

मृत्यु या जीवन
मुझे इस मध्य पथ का
रोग बन्धन
तनिक भी भाता नहीं है।

मैं न बनना चाहता वह बुद्ध
जो बुद्धत्व की बलि आप दे दे,
मैं न बनना चाहता सम्राट् चंडाशोक
प्रियदर्शी बनूं ?
सम्राट् बनकर बुद्ध बन लूँ ?
यज्ञ पर करुणा न मेरी पल
सकेगी,
दान का वह पाप मैं
सच कर न पाऊँगा कभी भी,
जो कि करदे न्याय्य असहायत्व,
क्योंकि--

अन्यथा फिर
विजय का उपहार
केवल हार होगा,
मानवी संवेदना का
चिर पराभव।
मत करो वह साधना
जिसमें तुम्हें यह मूँदनी
आँखें पड़ें
मारकर अब कुंडली
बैठो नहीं तुम
युगों की सम्पत्ति पर
बन साँप ;
चलो निकलो
पर न तोड़ो यह किला,
जिसको बनाया था हमारे
बाप ने,
मजदूर ने, औ' श्रमिक ने,
रे, ज्ञान के औ'
कर्म के मजदूर ने ;
तुमने उठा तलवार ही
निज घृणित बर्बरता भयानक
वीरता कह--
किया है यह राज,
क्षमा के गाये बहुत से गीत
पर न आया हड्डियों पर माँस,
क्या करें मिलता नहीं है न्याय
यदि तुम्हारे नियम में हों बद्ध,
हम नहीं छाया कि पकड़े पाँव
पीछे ही तुम्हारे विसटते जायें
दलित से :
शपथ है : सम्राट् की यशवासना

के हेतु जिसने
हरम में रख अगन नारी दासियाँ
कर प्रेम का छल, दिया बहका,
हम बनायेंगे न फिर तेरेलिये वह ताज
अब नहीं वह काल--
लाश अपनी सजाने
जिसने हमारे जीवितों से भी
अधिक,
हमसे पिरैमिड--
मार निर्माणित कराली !

अब नहीं वह युग
कि हमसे
काट धर्मादा
बनाओगे यहाँ मन्दिर धवल तुम !
एक मुट्ठी धूलि जिसका मूल्य थी
वह आज इतना भारमय अब
हो गया है,
तुल गये हैं आज इस
संसार के सब मुकुट
फिर भी बन नहीं पाये
तनिक पासंग।

यह नहीं प्रतिशोध,
डाकू को चुनौती दे रही है
आज मानवता तड़पकर--
युगों तक चलता रहेगा युद्ध--
रक्तबीजों से न तुमको मिल--
सकेगी मुक्ति....

(३)

ओ विलासी !
तुझे देकर आज तक
अपना नया यौवन
हँसाते हम रहे हैं,

किन्तु आज स्वतंत्रता
अँगड़ा रही है,
इस गभीर गुलाम के दृढ़ वक्ष में अब
आज उसका आत्मगर्व महान्
रह रह गरजता है,
चाहता है वह खुला आकाश
जिसमें सिर उठाकर ले सके अब साँस,
चाहता है एक वह आलोक
जिसमें हो न कोई अन्धकारित छाँह,
बज उठे इस प्राण की मृदुशक्ति
मानव हों स्वतंत्र समान,
जिसमें एक भी ऐसा न हो
जो हो न स्वयं महान् !

हम मजारों पर न तेरे
जलायेंगे दीप,
गिर रहे साम्राज्य पर छाया थिरकती
डूबता रवि गिरायेगा--
तब न गायेंगे उठाकर बीन
क्योंकि
होगी हाथ में तलवार अपने
रक्त की प्यासी
भरी त्यों वामना से नारि,
बहुत दिन की आर्त अपमानित व्यथित यह
आज मानवता हुई फौलाद--

काट देना चाहती है
क़ैदियों की झनझनाती बेड़ियों
का बाँध।
एक वज्रनिनाद देखो ठनकता है,
बेलचा अब द्वार पर टकरा रहा है
बधिर करता शब्द
उसमें मिल रहा है
किसानों की रोटियों को
छीन खाते वर्ग के घर के--
पतन का
भयद वह चीत्कार।

कौनसा है नद जगत में
नहीं जिसकी लहरियों में
मिल चुका रे खून
कौन सा है स्नेह तेरा
भीख की लपटें जगाकर
दिया हमको नहीं जिसने भून।
हम न पैगम्बर कि तू
आकर हमारे चरण का कर स्पर्श।

हमें तो बस बात कहनी एक--
किसलिए हम तू नहीं है एक,
फूट है यदि, बीच की तब तो मिटाये फाँस
किन्तु फिर क्यों चाहता तू एक--
आपस का विभाजन ?
क्योंकि तेरा स्वार्थ ही है आज--
हमें मानव बनाने में बाँध !
क्योंकि अपने लाभ के हित
बनाना तू चाहता है
हमें अपना दास
ठहर जा ज़ालिम, महाजन,

तनिक तो तू खोल वह
मदिरा विघूर्णित
आँख अपनी
देख--
कहाँ से लाया बता सम्पत्ति ?
कहाँ से लाया बता साम्राज्य ?

हृदय में मेरे प्रबुद्ध प्रदीप्त
युगों के संस्कार कारागार में से
निकलते हैं छूटकर बन्दी अनेकों
और स्वागत कर रही है
आज कविता सुन्दरी
मेरी, भरे निज कंठ में
अङ्गार के से दहकते से गीत--
बन्दनवार छाये नगर ग्रामों में
रहा हूँ देख
जब कदाचित् मैं रहूँगा नहीं जीवित
किन्तु मेरे गीत की इस गूंज का
वह छोर पकड़े नवल मानवता उठेगी
और मैं रह जाऊंगा पीछे कि
पथ का हो न पायेगा
कभी भी अन्त।

अमरता का स्वप्न
उनकी खोज थी जो सो रहे थे--
गाव तकियों पर पड़े सब भूल !
एक क्षण जब क्षणिकता का
स्वाद लेने उठाता था
दास अपना शीश
पड़ती थी तभी तलवार
सिर पर झूल !

हड्डियों को काटकर कड़ी बनाकर
पद्मिनी के शीश में दूं खोंस
क्योंकि मैं अपमान करना
चाहता हूँ
आततायी का,
मुझे अंकुश बना सा चुभ रहा है
यह कि--
मुझको पशु बनाने तू खड़ा है--
मैं कि वह अथोन
जो शोषित, श्रमिक, मानव
कि जिनको भी मना कर पिलाया था
मात ने निज रक्त तक को
बना मीठा दूध ,

स्वर्ग में भी नहीं है मेरे लिए कुछ--
क्योंकि वह भगवान
मुझ से बात करने का न कोई
पायगा अवकाश ।

मैं वही शम्बूक हूँ
तूने दिया था रोक उस दिन
स्वर्गपथ पर मुझे जाते देख,
मैं वही हूँ एकलव्य--
कि धनुर्धारी वीर अर्जुन
डर गया था--
और तूने ले लिया था अँगूठा
मेरा कि तेरे स्वार्थ की हो सिद्धि
गोरे रंग के अभिमान !

अरे नादिरशाह !

मैं वह हूँ कि तेरी तेज़
तलवारें गयी थीं काट--
लेकिन मर न पाया मैं अभी तक !

याद रख मैं हूँ
वही अभिभूत ढाका का जुलाहा
काट ली थीं उँगलियाँ जिसकी
किसी दिन क्रुद्ध नूने--
क्योंकि उनके लंगरों से
टिकाया था रोक मेरे नीर पर
रे प्रतारक--
उन्मत्त अपने जहाज़ों को;
देख !
मत बजा वह बीन मैं कब सुन रहा हूँ
बनाती है मुझे पागल करोड़ों की वज्रध्वनि :
वह नगाड़ों का घोष ;

इस बिदा पर आज
नयन में मेरे न होंगे अश्रु,
गरज आज़ादी करोड़ों को बुलाती--
छेड़ता हूँ मैं सृजन का गीत

कौन सा है युग युगों का सत्य
तेरे देवता भी जब न पाते
झेल निरवधि काल की यह मार,
प्रकृति के इस नियम से विद्रोह कर तू
कर रहा उपवास !
हँसता है पुनः अभिमान मेरा--
क्योंकि मैं भूखा भले, पर ज्ञान मेरी ओर,
मानवी सब रूप, सुन्दर, न्याय, मेरी ओर,

तू तो घृणित यक्ष्मा से विकल
केवल रहा है खाँस।
तेरी लाज कपड़ों से बँधी,
मन की भला कब पास ?
युगो से जो बह रहा है
महानद हुङ्कारता
अगणित लहरियों का महा सङ्घट्ट
पल पल नवल तीरों मे गरजता
करे किसकी आज पीछे याद ?
प्रतिपल और प्रतिक्षण बह रहा निर्बाध।

ओ अनन्त स्वरूप के अनुयायि !
सुन रहा जो पायलों की रुनुकती झङ्कार,
कितनों को मिला है आज तक
कह श्रवण का अधिकार ?
कितनों को मिली है गढ़ो की छत
शीश पर कह,
और कितनों को मिला है देवता का प्यार ?

तू ममझता है कि हम पशुमात्र
नहीं हम मे प्यार की अनुभूति ?
भूख से व्याकुल पड़ी किस सुन्दरी को
आ सकी आभूषणों की याद ?
जब उदित उस पूर्णिमा के चन्द्र को तू
हो रहा अवलोक कर था मस्त
खींचते थे हम तभी गाड़ी झुके तेरी दया के पात्र
और कहता था कि इनके है नहीं
दो आँख ?
चाँद औ' रोटी इन्हे हैं एक
किसलिये हम चुप रहे जब आज तक तू
प्राणहीन समझ हमारी क्रियाओं को

एक झूठा पात्र मात्र बना उन्हें
पथ पर रहा है फेंकता अलमस्त ?
जब कि मानवता हमारी बेचने को
बोलियाँ ही बोलता अब तक रहा है ?
जब कि छल की सिद्धि पर इठला रहा है,
खून से भींगी हुई उन रोटियों से
होंठ तू रँगता रहा है--

याद रख
फिर कह रहा हूँ,--
देवता बनने चला था
मानवों को ही बना कर पशु, कुचलकर !
उठ रही है हर दिशा से एक ही हुङ्कार
हड्डियों की, माँस की औ' रक्त की
ललकार.....

'अरी मानवता !
बड़े नवजात रूपसि बालिका यह
स्वच्छ स्निग्ध स्वतन्त्रता;--
औ गत युगों का रूप--
शिशु की नाल भू में गाड़ दें हम,
अतः भीषण आततायि नृशंस,सुन
हम चल पड़े हैं आज तेरा सत्य
करने सर्वनाश,
प्रबुद्ध धीर गुलाम ।'

हमें हर्ष है कि रांगेय राघव की चौथी किताब हम प्रकाशित कर रहे हैं। इस नवयुवक कवि का प्रादुर्भाव हिन्दी में अभी हुआ है, किन्तु वास्तव में उसके पीछे एक लंबी परंपरा है जो समय के साथ ही जनता के सामने धीरे धीरे खुल सकेगी। उसका कला-क्षेत्र इतना विस्तृत है, और वह इतना विकासशील है, कि एक पुस्तक देख कर ही उस पर कोई अंतिम धारणा स्थापित कर लेना अपने आपके साथ अन्याय करना होगा।

रांगेय राघव के उपन्यास, कहानी, एकांकी, रिपोर्ताज, गीत, कविताएं, यदि सबको देखा जाय तो हमें विस्मय करना होगा कि यह सब एक व्यक्ति का लिखा हुआ ही है! किन्तु वैज्ञानिक विश्लेषण से हम भीतर ही भीतर जाग्रत होती चेतना की एक अबाध धारा को सरलता से ढूढ़ सकते हैं। जितनी शीघ्रता से कवि ने हिन्दी साहित्य में अपने लिये स्थान बना लिया है उससे हमें विश्वास है कि जनता "पिघलते पत्थर" का कंठ से स्वागत करेगी।

इस पुस्तक का
मूल्य २)

सरस्वती प्रेस के प्रमुख कलाकार
श्री रांगेय राघव की कृतियाँ

[१]

तूफ़ानों के बीच

बंगाल के अकाल से सम्बन्धित रिपोर्टाजों का अनूठा संग्रह

मूल्य-केवल १)

[२]

पिघलते पत्थर

नवीन कविताओं का संग्रह

मूल्य मात्र २)

[३]

अजेय खण्डहर

स्तालिनग्राद के ऊपर महाकाव्य

मूल्य मात्र २)

[४]

घरौंदे

मौलिक सामाजिक उपन्यास

मूल्य ५)

[५]

विषाद-मठ

नवीनतम रोचक उपन्यास

मूल्य ४)

सरस्वती प्रेस
बनारस